फरवरी 94

मूल्य तीन रुपये

कुरुक्षेत्र

कैसे दूर हो गांवों से गरीबी

एक परिचर्चा

प्रधानमंत्री की रोजगार योजना के कार्यान्वयन में सहायता के लिए बैंकों को निर्देश

भारतीय रिजर्व बैंक ने बैंकों को निर्देश दिए हैं कि वे प्रधानमंत्री की रोजगार योजना के कार्यान्वयन के लिए उपयुक्त निर्देश जारी करें।

सरकार ने प्रधानमंत्री की रोजगार योजना शुरू की है जिसका उद्देश्य शिक्षित बेरोजगार युवकों को स्व-रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना है। योजना सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में 2 अक्तूबर, 1993 से शुरू की गयी।

इस योजना में 10 लाख से अधिक लोगों को रोजगार दिलाने का लक्ष्य है और इसके अंतर्गत आठवीं योजना में उद्योग, सेवा और व्यापार के जरिए सात लाख अति लघु उद्यम स्थापित किए जायेंगे। इस योजना के कार्यान्वयन में विशेष रूप से उद्यमियों के चयन, प्रशिक्षण और परियोजना प्रारूप तैयार करने में प्रतिष्ठित गैर सरकारी संगठनों की सहायता भी ली जायेगी।

देश के किसी भी ग्रामीण या शहरी क्षेत्र में रह रहे 18-35 वर्ष आयु के मैट्रिक (पास या फेल) या आई. टी. आई. पास या सरकार द्वारा प्रायोजित कम से कम छह माह का तकनीकी कोर्स कर चुके शिक्षित बेरोजगार युवा इस योजना के पात्र हैं। इसके अतिरिक्त उनके लिए यह भी आवश्यक है कि वे उस क्षेत्र में कम से कम तीन वर्ष से स्थायी रूप से रह रहे हों, उनकी पारिवारिक आय 24,000 रुपये वार्षिक से अधिक न हो और किसी राष्ट्रीयकृत बैंक/वित्तीय संस्था/सहकारी बैंक में बकाया देनदारी न हो। योजना में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लोगों को 22.5 प्रतिशत और अन्य पिछड़े वर्गों को 27 प्रतिशत आरक्षण दिया गया है।

व्यक्तियों के मामले में एक लाख रुपये तक की परियोजनाए इस योजना में ली गयी हैं। यदि दो या अधिक योग्य व्यक्ति साझेदारी में उद्यम लगाना चाहें तो अधिक लागत वाली परियोजना भी स्वीकार की जायेगी बशर्ते परियोजना लागत में प्रत्येक व्यक्ति का हिस्सा एक लाख रुपये या उससे कम हो। उद्यमी को परियोजना लागत का 5 प्रतिशत नकद अंशदान के रूप में अपना हिस्सा देना होगा। ऋण के लिए किसी अन्य गारंटी की जरूरत नहीं होगी। व्यक्तिगत गारंटी के अलावा योजना के अंतर्गत निर्मित संपत्ति बैंक की गिरवी/प्रतिभूत मानी जायेगी। भारत सरकार परियोजना लागत पर प्रति उद्यमी को 15 प्रतिशत की सब्सिडी देगी जो अधिकतम 7500 रुपये होगी। ऋण स्वीकृत होने के बाद उद्यमी को प्रशिक्षण देना भी योजना में शामिल है।

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। लघु कथाओं का भी स्वागत है। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है। 'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

वर्ष 39 अंक 4 माघ-फाल्गुन शक 1915, फरवरी 1994

संपादक : राम बोध मिश्र
सह संपादक : बलदेव सिंह मदान
उप संपादक : ललिता जोशी

उप निदेशक (उत्पादन) : एस.एम. चहल
विज्ञापन प्रबंधक : बैजनाथ राजभर
व्यापार व्यवस्थापक : जॉन नाग
सहायक व्यापार व्यवस्थापक : एडवर्ड बैक
आवरण सज्जा : आर.के. टंडन

एक प्रति : 3.00 रु० वार्षिक चंदा : 30 रु०

इस अंक में

गरीबी की जड़ों को उखाड़ना होगा 3
सुन्दर लाल कुकरेजा

ग्रामीण गरीबी : सार्थक समाधान 6
ओम प्रकाश दत्त

योजनाबद्ध विकास से गरीबी में कमी 8
नवीन पंत

गांव की गरीबी दूर करने में कुटीर उद्योगों की भूमिका 11
डा० पुष्पा अग्रवाल

गरीबी दूर करने के योजनाबद्ध प्रयास 14
डा० अवधेश कुमार श्रीवास्तव

पुल (कहानी) 18
डा० शीतांशु भारद्वाज

गांवों की समस्याएं और उनके समाधान के प्रयास 21
हरीश पुरी

ग्रामीण समाज के कमजोर वर्ग के प्रति संचार माध्यमों का दायित्व 25
रामजी प्रसाद सिंह

सुनिश्चित रोजगार योजना क्या है 27
मीता प्रेम शर्मा

ग्रामीण विकास एवं जन सहभागिता : समस्या एवं समाधान 29
वेद प्रकाश उपाध्याय

वयस्क शिक्षा कार्यक्रम और संचार माध्यम 31
संजय कुमार प्रसाद

पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण सड़कों का विकास 33
सत्यपाल मलिक

छोटी किन्तु गुणों से मोटी : हरड़ 36
आभा जैन

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण विकास मंत्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

पाठकों के विचार

'कुरुक्षेत्र' का अक्टूबर अंक पढ़ा। यह वार्षिक अंक काफी ज्ञानवर्धक था। वास्तव में, भारत की महानतम समस्या के विभिन्न पक्षों को इसमें उजागर किया गया था। वैसे तो भारत आज विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त है, पर जनसंख्या वृद्धि की समस्या सबसे भीषण है, क्योंकि यह आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। अतः मेरे विचार से जनसंख्या नियंत्रण को सर्वाधिक महत्व दिया जाना चाहिए, जिससे आगामी दशक में जनसंख्या वृद्धि-दर 1.5 प्रतिशत तक की जा सके। इसके लिए एक जन-अभियान की आवश्यकता है तथा इसे गंभीरता से लिया जाना चाहिए।

जहां तक मौजूदा सरकारी प्रयासों का सवाल है, इससे जनसंख्या वृद्धि-दर में क्रांतिकारी कमी नहीं आएगी। कारण कि सरकार के जो प्रयास हो रहे हैं, प्रायः वे उनके लिए हैं, जो कुछ न कुछ शिक्षित हैं और अपनी जिम्मेदारी समझने लगे हैं। बेशक यह सरकारी प्रयासों का ही परिणाम है पर भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे लोगों की बहुतायत है जिन पर इन प्रयासों का नगण्य प्रभाव पड़ा है। वास्तव में, आज इन्हीं वर्गों को परिवार कल्याण कार्यक्रम के अंतर्गत लाने की आवश्यकता है। इसके लिए सबसे प्रभावी उपाय यह होगा कि पूरे ग्रामीण इलाकों के लिए पुरुषों व महिलाओं के बहुत सारे जत्थे तैयार किए जाएं, जो सरकार द्वारा पोषित हों। प्रत्येक दस व्यक्तियों के एक जत्थे को लगभग दो-तीन जिलों का भार दिया जाना चाहिए जो उन क्षेत्रों में घूम-घूमकर लोगों को यह समझाने का प्रयास करे कि परिवार कल्याण उनके साथ-साथ पूरे देश के लिए कल्याणकारी है। आशा है, इस उपाय का अपेक्षाकृत जल्दी प्रभाव पड़ेगा।

सुमन कान्त झा
"चम्पारण निवास"
नन्दगांव, शास्त्रीनगर
पटना–23 (बिहार)

'कुरुक्षेत्र' का यह वार्षिक अंक पठनीय और संग्रहणीय है। ग्रामीण विकास के संदर्भ में जनसंख्या-वृद्धि और जनसंख्या-नियंत्रण से संबद्ध इतनी उत्कृष्ट सामग्रियों के एकत्र-संग्रह के लिए आपको मेरी हार्दिक बधाई।

डा. कुमार विमल
96, एम. आई. जी. एच.,
लोहिया नगर,
पटना–800020

'कुरुक्षेत्र' का दिसम्बर 1993 अंक देखने पढ़ने को मिला। गांवों में बेरोजगारी वर्तमान समय की ज्वलंत समस्या है। इस बिंदु पर लेखकों-पाठकों का ध्यान आकर्षित करके आपने देश की केंद्रीय समस्या की पड़ताल तथा उसके समाधान की दिशा में प्रयास किया है। समस्याओं का सामना करना उनका हल खोजने की दिशा में पहला कदम है। सरकारी विभाग का प्रकाशन होकर भी 'कुरुक्षेत्र' मुद्दों की निर्मम आलोचना में संकोच नहीं करता। पत्रिका का अंक भी समय से मिला है जो अपने आप में एक उपलब्धि है।

वस्तुतः गांवों में बेरोजगारी को दूर करना देश की सभी समस्याओं के निराकरण की दिशा में पहला कदम है। गांवों में रोजगार पैदा करने का अर्थ है गांवों की खुशहाली, शांति, विकास पारस्परिक सहयोग, प्रेम, विश्वास। गांवों में रोजगार पैदा होने से नगरों की तरफ युवकों तथा अन्य व्यक्तियों का जो पलायन हो रहा है वह रुक जायेगा। परिणामतः नगरों की अनेक प्रकार की समस्याओं जैसे जनसंख्या भूमि, झुग्गी झोंपड़ी, अशांति, अपराध आदि पर नियंत्रण पाने में भी सुविधा होगी। गांवों में रोजगार पैदा करने का अर्थ है देश की हस्तकला, कुटीर उद्योग, पर्यटन कला, संस्कृति तथा अन्य सभी क्षेत्रों में समन्वित विकास। अतः इस कार्य को सर्वोच्च प्राथमिकता के आधार पर सफल बनाना चाहिए।

ओमप्रकाश वर्मा
ई-4, एन एम एल,
जमशेदपुर-831007

गरीबी की जड़ों को उखाड़ना होगा

सुन्दर लाल कुकरेजा

इसे एक विडम्बना ही कहा जायेगा कि अपनी आजादी की आधी शताब्दी के बाद भी भारत की गणना विश्व के गरीब और पिछड़े देशों में की जाती है। अभी भी यहां की एक तिहाई जनसंख्या, सात पंचवर्षीय योजनाएं पूरी हो जाने के बाद भी, गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रही है। भारत की यह त्रासदी तब और भी कष्टदायक लगती है जब हम अपनी तुलना विश्व के उन देशों से करते है जिन्होंने लगभग उसी काल में स्वतंत्रता प्राप्त की थी जब अंग्रेज भारत छोड़ कर चले गए थे किन्तु जिन्होंने अपनी सारी कमियों और कमजोरियों के बावजूद न केवल आर्थिक प्रगति की हैं, अपितु अपने नागरिकों के जीवन स्तर को भी काफी ऊंचा उठा कर अन्य देशों के सामने अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। इस दृष्टि से हम अपनी तुलना चीन से कर सकते हैं जिसके साथ हमारी अनेक समानताएं हैं किन्तु जो आज भारत से काफी आगे निकल चुका है और एक आर्थिक महाशक्ति बनने के रास्ते पर चल पड़ा है जबकि हम अभी तक अपनी गरीबी से ही जूझ रहे हैं।

हम आज भी अपनी बढ़ती आबादी को अपनी सारी मुसीबतों की जड़ मानते हैं, परन्तु चीन की आबादी हमसे भी कहीं अधिक है। लेकिन भारत और चीन के बीच इस दृष्टि से दो बड़े अन्तर बहुत स्पष्ट हैं। एक तो यह कि हम अपनी अधिक आबादी को एक अभिशाप मानते हैं, वहां चीन ने इस जनशक्ति को जनसंसाधन मानकर रचनात्मक कार्यों में उसका उपयोग करने के कार्यक्रम बनाए हैं और उसका लाभ उठाया है। दूसरे चीन ने इस बढ़ती आबादी पर नियंत्रण रखने के लिए कड़े कदम उठाए हैं और जनसंख्या वृद्धि की दर को काफी नीचे बनाए रखने में सफलता पाई है जबकि भारत में परिवार कल्याण आन्दोलन बहुत कुछ सैद्धांतिक स्तर पर ही सिमट कर रह गया और व्यवहार में उस पर अपेक्षित अमल नहीं हो पाया।

यह ठीक है कि भारत ने पिछले 40-45 वर्षों में अपनी जनता के लिए काफी सुख सुविधाएं जुटाई हैं और कंगाली का जीवन जी रहे लोगों में से काफी संख्या में लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने की दिशा में सक्रिय उपलब्धियां हासिल की हैं, फिर भी यह सत्य है कि अब भी करीब 25 करोड़ लोग जीवन की मूलभूत सुविधाओं से वंचित हैं और अपने आप में यह संख्या काफी बड़ी है।

पिछले पचास वर्षों से, जब से भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की है, गरीबी के इस अभिशाप को दूर करने के लिए परियोजनाएं और कार्यक्रम बना कर काम किया जाता रहा है और हर योजना के बाद से धनी और निर्धन के बीच का अंतर कम होता गया है। किन्तु यह समस्या जितनी विशाल और विकराल है, इसे हल करने के लिए उतने गम्भीर व व्यापक प्रयास नहीं हुए जितनी अपेक्षा की जाती थी।

देश की बढ़ती आबादी निश्चय ही गरीबी उन्मूलन के प्रयासों का सबसे बड़ा अवरोध रहा है लेकिन अभी तक परिवार कल्याण के लिए जितने भी प्रयास किए गए, उन सबके बावजूद आबादी में पहले की अपेक्षा कहीं अधिक वृद्धि हो रही है। भारत की आबादी इस शताब्दी के आरम्भ—1901 में 23 करोड़ 84 लाख थी जो आधी शताब्दी में बढ़कर 1951 में 36 करोड़ 11 लाख हो गई थी, लेकिन आजादी के बाद से इसमें अप्रत्याशित रूप से वृद्धि हुई। 1961 तक यह आबादी प्रति वर्ष 1.96 प्रतिशत की दर से बढ़ कर 43 करोड़ 93 लाख हो गयी थी किन्तु बाद के दशकों में तो जनसंख्या में वृद्धि की वार्षिक दर औसतन 2.2 प्रतिशत हो गयी और परिणाम यह हुआ कि जो आबादी 1971 में 55 करोड़ थी वह 1981 में 68 करोड़ और 1991 में लगभग 85 करोड़ हो गयी। जनसंख्या में वृद्धि की यही रफ्तार हमारे अनेक कष्टों और कठिनाइयों का कारण बनती है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि पिछले एक-डेढ़ दशक में परिवार को सीमित रखने के विशेष अभियान भी चलाए गए, फिर भी बढ़ती जनसंख्या पर उनका कोई प्रभाव परिलक्षित नहीं हुआ।

किन्तु जनसंख्या में वृद्धि का असर भारतीय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में दिखाई दे रहा है। पिछले दस वर्षों में भारत में प्रति व्यक्ति प्रति दिन अनाज की उपलब्धता में मात्र 20 ग्राम की ही वृद्धि हो पाई है। 1981 में यह मात्रा 453.7 ग्राम थी और 1990 में यह केवल 474.6 ग्राम हो पाई। पिछले एक दशक में भारत में प्रति व्यक्ति आय में हर वर्ष केवल 50 रुपए की ही वृद्धि हुई है। 1980-81 के मूल्यों पर प्रति व्यक्ति आय का औसत 1630 रुपये था जो दस वर्षों में केवल 2142 रुपए तक ही पहुंचा है। इस दशक में राष्ट्रीय आय में वृद्धि भी लगभग इसी अनुपात में रही है। एक ओर बढ़ती आबादी और दूसरी ओर आय में लगभग स्थिरता का स्वाभाविक परिणाम यही होना था कि भारत की

गरीबी अपनी जगह बनी रही और उसे मिटाने के प्रयासों को अधिक सफलता नहीं मिल पाई।

भारतीय अर्थ व्यवस्था में गतिशीलता और आर्थिक स्थिति में सुधार का बहुत कुछ श्रेय हमारी पंचवर्षीय योजनाओं को मिलना चाहिए जिनमें योजनाबद्ध ढंग से गरीबी पर हमले किए गए और जनता का जीवन-स्तर उठाने के लिए कार्यक्रम शुरू किए गए। इन योजनाओं द्वारा भारतीय कृषि, उद्योग धन्धों, मूलभूत आवश्यकताओं और जनता के सामाजिक-आर्थिक जीवन में सुधारों का सूत्रपात हुआ और ऐसा ढांचा खड़ा किया जा सका जिसके आधार पर हमारी अर्थव्यवस्था एक लम्बी छलांग लगाने की स्थिति में आ सकती थी। किन्तु यहां भी कठिनाई यह रही कि योजनाएं तो बनीं, उन पर अमल भी हुआ और धन भी खर्च किया गया लेकिन उनका लाभ आम जनता को सीधे नहीं मिल पाया। इसका सबसे बड़ा कारण शायद यह रहा कि इन योजनाओं में जनता की सीधी भागीदारी नहीं रही और योजना प्रक्रिया का विकेन्द्रीकरण नहीं किया जा सका। केन्द्र में बैठ कर जिलों और गांवों के लिए कार्यक्रम बनाना तो आसान है, किन्तु उन पर अमल अगर उन्हीं लोगों की साझेदारी से नहीं होगा जिनके लिए ये कार्यक्रम बनाए गए हैं तो उनका लाभ भी उन लोगों तक नहीं पहुंच पाएगा। इसीलिए एक के बाद दूसरी योजना पूरी होते जाने के बावजूद भारत में गरीबी की जड़ें नहीं उखाड़ी जा सकीं।

सातवीं योजना के क्रियान्वयन के दौरान आयोजना प्रक्रिया की इस कमी को अच्छी प्रकार अनुभव किया गया और तभी से इस बात के प्रयास शुरू हो गए कि योजनाओं का निर्धारण और उन पर अमल स्थानीय जनता अथवा उन लोगों की सक्रिय साझेदारी से किया जाए जो उससे लाभान्वित होने वाले हैं। इस अनुभव को आठवीं योजना तैयार करते समय ध्यान में रखा गया है और योजनाओं के विकेन्द्रीकरण का प्रयास किया गया है। बहुत-सी योजनाएं, जो पहले केन्द्र सरकार के अधीन क्रियान्वित की जा रही थीं, आठवीं योजना की अवधि में राज्यों को स्थानांतरित कर दी गईं और उन्हें भी सलाह दी गई कि जिला स्तर पर विचार-विमर्श के बाद उन्हें क्रियान्वित कराया जाए। योजनाओं का जिला स्तर पर निर्धारित कर राज्य और केन्द्रीय योजनाओं से उनके समन्वय के लिए भी अब पर्याप्त दलीलें दी जा रही हैं।

संसाधनों की कमी

गरीबी उन्मूलन के प्रयासों में अब तक वांछित सफलता न मिल पाने का एक मुख्य कारण यह भी है कि इतने विशाल देश और इतनी बड़ी जनसंख्या को समृद्धि की ओर ले जाने के लिए जितने परिमाण में संसाधनों की आवश्यकता होती है, उतने संसाधन आजादी के तुरन्त बाद जुटा पाना सम्भव नहीं था। गरीबी दूर करने के लिए जनता को रोजगार व आय के साधन प्रदान करना आवश्यक है और ये साधन विकास कार्यों के आगे बढ़ने से उपलब्ध होते हैं। गांवों में किसानों को अच्छी खेती के लिए बीज, बिजली और पानी की जरूरत है; किसानों की उपज की बिक्री के लिए उसे मंडियों तक ले जाना होता है जिसके लिए सड़कें और परिवहन के साधनों की जरूरत है; अनाज को सुरक्षित रखने के लिए भण्डार गृहों की आवश्यकता है; अधिक उपज के लिए उत्तम किस्म के हल-बैल और ट्रैक्टर चाहिए। किसानों को अपनी मेहनत और लागत का पूरा लाभ मिल सके, इसके लिए उन्हें फसल का लाभकारी मूल्य देने की आवश्यकता है। फसल की कीड़ों और बीमारियों से रक्षा के लिए वैज्ञानिक शोध पर बल दिया जाना है। जिन दिनों फसल का काम नहीं होता, उन दिनों भी किसानों को अतिरिक्त आय के लिए कुटीर उद्योगों, हस्त शिल्प और परम्परागत धन्धों को चालू रखने के लिए मदद की अपेक्षा होती है। कम व छोटी जोत वाले किसानों, भूमिहीन मजदूरों के हितों की रक्षा करनी है, गांवों में शिक्षा व स्वास्थ्य केन्द्रों का प्रसार होना है। उद्योगों के लिए आवश्यक मात्रा में कच्चा माल, बिजली, प्रशिक्षित कारीगरों और माल की बिक्री के लिए बाजार व क्रय शक्ति की आवश्यकताएं पूरी करनी हैं, और इन सब के लिए एक साथ पूंजी का प्रबंध कर पाना सम्भव नहीं हो सकता।

इसीलिए हर अनुवर्ती पंचवर्षीय योजना में इस बात का प्रयास किया जाता रहा कि पिछली योजनाओं के क्रियान्वयन से जितनी सम्पत्ति का सृजन हुआ है, उसका समाज के सभी वर्गों और देश के हर भाग में आवश्यकतानुसार समान वितरण किया जा सके। इसी का परिणाम यह निकला कि समाज के काफी बड़े वर्ग का उत्थान और उसके आर्थिक स्तर में सुधार हो सका। आजादी के बाद के पहले दशक में जहां हम खाने के लिए भी विदेशों से अनाज मंगाने को विवश थे, वहां अगले दशक में आत्मनिर्भरता की ओर कदम बढ़ाने शुरू किए और सन् सत्तर के दशक के पूरा होते होते अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया।

फिर भी, यह मानना पड़ेगा कि अभी भी हम हर खेत को पानी, हर हाथ को काम और हर भूखे को भोजन देने की स्थिति में नहीं आ पाए हैं। हर आंख से आंसू पोंछने के महात्मा गांधी के सपने को पूरा करने के लिए अभी हमें काफी दूरी तय करनी है।

पुराने तौर तरीके

गरीबी के अभिशाप से मुक्त न हो पाने का काफी दोष हमें अपनी उस मानसिकता को भी देना होगा जिसके कारण हम उत्पादन के पुराने पड़ चुके तौर तरीकों को छोड़कर नए आधुनिक उपायों को अपनाने के लिए अपने को तैयार नहीं कर पाते। आज भी हम खेती के उसी पुराने तरीके के प्रति अनुरक्त हैं जो खेत की उत्पादन क्षमता के एक चौथाई के बराबर ही उत्पादन दे पाता है। आज भी हम सिंचाई के लिए पानी के प्रयोग के उस तरीके को बदलने के लिए तैयार नहीं हैं जिसमें नहरों में बह कर आने वाला आधा पानी तो खेत में पहुंचने से पहले ही जमीन सोख लेती है। इतने वर्षों के बाद भी हम हर साल अतिवृष्टि और अनावृष्टि के कारण फसलों को बर्बाद होते देखते रहते हैं, किन्तु जल के विवेकपूर्ण उपयोग के लिए कुछ नहीं कर पाते। हर साल बाढ़ से होने वाले नुकसान की भरपाई के लिए करोड़ों रुपये तो खर्च कर देते हैं, लेकिन बाढ़ की रोकथाम के लिए स्थायी प्रबंध करने के लिए हमें पूंजी की कमी खलने लगती है।

उद्योग धन्धों, हस्त शिल्प, कुटीर उद्योगों, हथकरघा, बुनकरों, पशुपालन आदि किसी भी क्षेत्र पर नजर डालें तो यही लगता है कि अगर हम इन पुराने तरीकों को बदल कर आधुनिक तरीकों को अपना लें तो हमारा उत्पादन और उत्पादकता दोनों बढ़ सकती हैं और हमारे लिए समृद्धि का मार्ग भी खुल सकता है। लेकिन हमारे सोचने के तरीके में ऐसा परिवर्तन नहीं आ पाया है, इसलिए हम अभी गरीबी के चंगुल से भी नहीं निकल सके हैं।

निरक्षरता एक पाप

गरीबी अगर अभिशाप है तो निरक्षरता एक पाप है। हमारे अधिकांश दुःख दर्दों, जिनमें गरीबी सबसे ऊपर है, का सबसे बड़ा कारण निरक्षरता है। 1971 की जनगणना के अनुसार 55 करोड़ की जनसंख्या में केवल 29.48 प्रतिशत लोग ही साक्षर थे। उसके दस वर्ष बाद देश की आबादी करीब 14 करोड़ बढ़ गई थी और 1981 में वह 69 करोड़ हो गई थी, लेकिन साक्षरों का प्रतिशत 36.23 से अधिक नहीं हो पाया था। 1991 तक आबादी में 16 करोड़ की और वृद्धि हो गई, किन्तु निरक्षरों का प्रतिशत अब भी लगभग 55 ही है। विश्व भर में जितने निरक्षर हैं, उनमें सबसे अधिक निरक्षर अब भी भारत में हैं। जो व्यक्ति अक्षर ज्ञान तक नहीं कर पाता—अथवा जिसे इसका अवसर ही नहीं मिल पाया—वह जीवन की अन्य सुख सुविधाओं को पाने के लिए भी कोई संघर्ष नहीं कर पायेगा। अतः अगर भारत से गरीबी मिटानी है तो एक ओर बढ़ती आबादी पर सार्थक नियंत्रण के उपाय करने होंगे और दूसरी ओर निरक्षरता को दूर करने पर जोर देना होगा।

सच तो यह है कि गरीबी केवल एक आर्थिक स्थिति नहीं है। गरीबी के उस रूप का मुकाबला करने के लिए तो लगातार प्रयास चल रहे हैं और उनका प्रतिफल भी मिल रहा है। गरीबी वास्तव में एक मानसिकता है जो हमें अपनी नियति पर सन्तोष रखना सिखाती है और आगे बढ़ने के, संघर्ष करने के, संकल्प को अवरुद्ध करती है। गरीबी को मिटाना है तो इस मानसिकता को भी बदलना होगा। तब भारत को एक बार फिर सोने की चिड़िया बनने में देर नहीं लगेगी।

बी-7, प्रेस एन्कलेव, साकेत,
नयी दिल्ली–110017

लेखकों से अनुरोध

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, कविता, संस्मरण, लघुकथा, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिये। कृपया अपनी रचनाएं टाइप कराकर दो प्रतियों में भेजें। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न नहीं होगा, उन्हें स्वीकार करना संभव नहीं होगा। विशेष अवसरों के लिए लेख कम से कम दो माह पहले भेजें। सभी रचनाएं संपादक, 'कुरुक्षेत्र', 467, कृषि भवन, नई दिल्ली - 110001 के पते पर भेजें।

ग्रामीण गरीबी : सार्थक समाधान

✍ ओम प्रकाश दत्त

भारत में योजनाबद्ध विकास के लिए बनीं अब तक की आठ पंचवर्षीय योजनाओं में गरीबी और बेरोजगारी को दूर करने पर सबसे अधिक बल दिया गया है। इन योजनाओं में मुख्य ध्यान गांवों में गरीब लोगों की हालत सुधारने के लिए रोजागर के अवसर जुटाने पर दिया जा रहा है। इसके लिए वर्तमान आठवीं योजना में ग्रामीण विकास पर 30,000 करोड़ रुपये खर्च करने का प्रावधान है। पिछले एक दशक में इसके लिए करीब 25,000 करोड़ रुपये पहले ही खर्च किए जा चुके हैं। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 1961 में निर्धन ग्रामीणों की संख्या अर्थात गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बिताने को मजबूर ग्रामीणों की संख्या 56.8 प्रतिशत थी। दस साल बाद 1971 में यह घटकर 47.8 और 1987-88 में 33.4 प्रतिशत पर आ गयी अर्थात 1960 के दशक से बाद के करीब 30 वर्षों में करीब 23 प्रतिशत निर्धन ग्रामीण, गरीबी की रेखा को पार कर पाए। लेकिन 33.4 प्रतिशत यानी आंकड़ों के अनुसार एक तिहाई से अधिक लोग गांवों में अब भी बदहाली और फटेहाली में रहते हैं।

देश के पांच लाख से अधिक गांवों में 74 प्रतिशत से अधिक आबादी रहती है। इनमें से तीन चौथाई से अधिक लोग पुराने तरीकों से ही खेती कर रहे हैं। गांवों के पारम्परिक काम-धंधे ठप्प या लुप्त होते जा रहे हैं। आबादी बेतहाशा बढ़ती जा रही है। स्पष्ट है कि वहां बेरोजगारी भी अनुपात से कहीं अधिक बढ़ रही है। अशिक्षित मजदूर तो आंशिक या पूर्ण बेकारी से परेशान हैं ही, शिक्षित लोगों को भी रोजगार मिलना मुश्किल होता जा रहा है। विकास व प्रगति का लाभ वास्तव में सीमित लोगों तक ही पहुंच रहा है। इसी के कारण तमाम प्रयासों के बावजूद अभाव, कुंठा, अपराध, हिंसा व अन्य सामाजिक-आर्थिक दोष पनप रहे हैं। सीमित साधनों ने शोषण व भ्रष्टाचार तथा नैतिक मूल्यों के ह्रास को खूब प्रोत्साहन दिया है। अमीरी व गरीबी के बीच अंतर कम होने की जगह निरंतर बढ़ रहा है। समाज का एक बड़ा भाग जीवन की मूल आवश्यकताओं जैसे रोटी, कपड़ा व मकान को भी प्राप्त कर पाने में असमर्थ है।

गांवों में गरीबी की समस्या का समाधान मोटे तौर पर तीन क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है। ये हैं कृषि, लघु व कुटीर उद्योग-धंधे तथा वित्तीय संसाधन। इन सबसे जुड़ा है जनसंख्या नियंत्रण। अगर आबादी में वृद्धि की दर पर प्रभावी अंकुश लग जाए, तो समस्या काफी आसान हो सकती है क्योंकि तब दस हाथों को काम दिलाने तक तीस नए खाली हाथ सामने आ जाने का दुष्चक्र नहीं रहेगा। गांवों में अगर स्थानीय संसाधनों व अवसरों का ही पर्याप्त व सही दोहन किया जाए तो रोजगार की भारी क्षमताएं विद्यमान हैं। इनमें कृषि का महत्व सबसे अधिक है क्योंकि इसके साथ अनेक सहायक व पूरक क्षेत्र— जैसे पशुपालन, मछलीपालन, मुर्गीपालन, मधुमक्खी पालन के अलावा कुटीर व लघु उद्योग जुड़े हुए हैं। कुटीर व लघु उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चा माल अधिकांशतः कृषि क्षेत्र से ही आता है। इसलिए कृषि क्षेत्र की तरफ और अधिक व विशेष ध्यान देना आवश्यक है। विशेषकर नगदी फसलों जैसे गन्ना, कपास, फल-सब्जी, मूंगफली आदि से काम के अवसर बढ़ने के साथ-साथ आय में वृद्धि भी की जा सकती है। इनके विकास के साथ इनसे जुड़े कुटीर उद्योगों जैसे फलों की डिब्बाबंदी को भरपूर बढ़ावा दिया जा सकता है। इन काम धंधों के लिए आवश्यक पूंजी दिलाने में शासन अगर थोड़ी चुस्ती, ईमानदारी तथा समझ-बूझ से कार्यक्रम चलाए तो गांवों से लोगों का शहरों की ओर पलायन काफी हद तक रोका जा सकता है। इन इकाइयों में बनने वाला सामान शहरों में सहकारी व अन्य उपभोक्ता केन्द्रों पर अधिकाधिक बेचने के अगर जोरदार विशेष प्रयास हों तो इनकी मांग और खपत की सुखद स्थिति बनने में देर नहीं लगेगी। खादी ग्रामोद्योग केन्द्र इसके ठोस व प्रेरणाप्रद उदाहरण हैं।

इन कामों के लिए प्रशिक्षण उपलब्ध होना सबसे पहली शर्त है। ट्राइसेम जैसी योजनाएं इस दिशा में निश्चित रूप से कारगर सिद्ध हो रही हैं। ग्रामीण कारीगरों को आधुनिक औजारों की सप्लाई का कार्यक्रम भी इस दिशा में सराहनीय है। इस कार्यक्रम को जुलाई, 1992 में शुरू किया गया और इसके अंतर्गत आठवीं योजना में पांच लाख ग्रामीण कारीगर लाभान्वित होंगे। यह कार्यक्रम फिलहाल 62 जिलों में चलाया जायेगा। लुहार, चर्मकार, बढ़ई व अन्य दस्तकार व अन्य पारंपरिक कारीगरों को आधुनिक औजारों के इस्तेमाल से अपने उत्पादन की गुणवत्ता बढ़ाने और आय में वृद्धि करने में मदद मिलेगी।

कृषि से जुड़ा एक अन्य मुद्दा है भूमि सुधार। देश में भूमि सुधार कार्यक्रम चल तो सही दिशा में रहे है लेकिन इनकी गति बड़ी मंद है। परिणाम यह है कि काफी बड़ा भूभाग समान रूप से वितरण से वंचित है। गांवों में सारे किसानों के पास कृषि भूमि नहीं है। वितरण की विसंगतियों के कारण अधिकांश कृषि भूमि सीमित लोगों के ही कब्जे में है। इसलिए किसानों को मजबूर होकर मेहनत मजदूरी के लिए इधर उधर भटकना पड़ता है या फिर शहर की ओर रुख करना पड़ता है। भूमि सुधार में अगर तेजी लायी जाये और इन्हें ईमानदारी से लागू किया जाये तो अनेक किसानों को बेकारी व शोषण से बचाया जा सकता है। गरीबी को दूर करने के अलावा इससे कृषि उत्पादन में वृद्धि में भी बड़ी मदद मिल सकती है। अधिकतम सीमा से फालतू मिली जमीन भूमिहीनों व खेत मजदूरों को अगर उपलब्ध करा दी जाये व बंजर परती जमीन को बेकार बैठे ग्रामीणों को देकर लाभप्रद बनाने के लिए पर्याप्त सहायता व समर्थन के समुचित प्रबंध किए जाएं तो गांवों में रोजगार की कमी को काफी हद तक दूर किया जा सकता है।

बेरोजगारी दूर करने में काम मिलने के अलावा अपना काम-काज खुद शुरू करने का भी समान महत्व है। अपने काम के लिए वित्तीय समर्थन अनिवार्य है। इसकी व्यवस्था संतोषजनक बनाने के प्रयास अभी ढीले हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय संस्थाओं को मजबूत बनाने और उन्हें सक्रिय भूमिका के लिए प्रोत्साहित करने की तरफ पूरा ध्यान नहीं दिया गया है। बैंकों के साथ सहकारी समितियों को भी आम ग्रामीणों के लिए अधिक ग्राह्य तथा सार्थक बनाने के लिए यह जरूरी है कि इनमें कार्यरत लोग ग्रामीण परिवेश से पूरी तरह परिचित हों और निष्ठावान हों। ग्रामीण बैंकों का काम इस मामले में संतोषजनक नहीं रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत वित्तीय संस्थाओं को वहां की विशेष व विभिन्न परिस्थितियों व आवश्यकताओं के अनुसार काम करने व नियम तथा शर्तों की छूट होनी चाहिए। जब तक गांवों में सामान्य लोगों को वित्तीय सहायता आसानी से और समय से उपलब्ध नहीं होगी, रोजगार अवसरों की योजनाएं लाभप्रद नहीं हो सकती हैं।

ग्रामीण गरीबों को काम उपलब्ध कराना हमारे ग्रामीण विकास प्रयासों का अभिन्न अंग रहा है। इसके लिए रोजगार उत्पादन की योजनाएं समय-समय पर चलायी गयी हैं। त्वरित ग्रामीण रोजगार योजना, काम के बदले अनाज कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना, इंदिरा आवास योजना जैसे अनेक कार्यक्रम चलाए गए हैं। इनमें से अधिकांश भौतिक परिसम्पत्तियों के निर्माण व ग्रामीण जीवन की समस्त गुणवत्ता में सुधार के उद्देश्य से बनाये गये हैं। स्थायी और निश्चित काम तथा तयशुदा स्वावलंबन के लिए स्वरोजगार का कोई विकल्प नहीं है चाहे वह कृषि क्षेत्र में हो या उद्योग में। रोजगार के लिए ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में केवल राहत देने वाले काम की बजाय ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादक स्वरूप की स्थायी व टिकाऊ परिसम्पत्तियां जुटाने की आवश्यकता है, जिनसे उत्पादन और उत्पादकता बढ़ सके, रोजगार के अधिक अवसर मिल सकें और जिनके परिणामस्वरूप स्थायी विकास संभव हो सके।

43, मैत्री अपार्टमेंट्स,
ए-3, पश्चिम विहार,
नयी दिल्ली– 110063

कुरुक्षेत्र
का ग्राहक बनने के लिए
सम्पर्क करे :
व्यापार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग
पटियाला हाऊस, नई दिल्ली - 110001

योजनाबद्ध विकास से गरीबी में कमी

✍ नवीन पंत

पिछले चार दशकों के योजनाबद्ध विकास के कारण देश में गरीबी कम हुई है। अब देश के अधिकांश भागों में दिल को दहला देने वाले गरीबी के वे दृश्य नहीं दिखाई देते जो कभी देश के जीवन की करुण कहानी थी। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि हमने गरीबी की समस्या का समाधान कर लिया है। तीन दशक पूर्व देश की 50 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी के नीचे जीवन बिता रही थी। विकास के विभिन्न कार्यक्रमों को लागू करने के बाद अब 30 प्रतिशत लोग गरीबी की रेखा के नीचे जीवन बिता रहे हैं। लेकिन जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप जहां पहले 25 करोड़ लोग गरीबी की रेखा के नीचे जीवन बिता रहे थे अब ऐसे लोगों की संख्या 25 करोड़ से कुछ अधिक है।

इस प्रकार हमारे देश की मुख्य समस्या गरीबी है। इसके कारण अनेक हैं। हम यूरोप में हुई औद्योगिक क्रान्ति से अछूते रहे। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब औद्योगिक क्रान्ति से यूरोप का नक्शा बदल रहा था, हमारे देश में अंग्रेजों का अधिकार था। उन्होंने अपने उद्योगों के विस्तार के लिए ऐसी वित्तीय नीतियों का अनुसरण किया जिसके चलते यह देश तैयार अंग्रेजी माल की मंडी बन कर रह गया था। अंग्रेज सैनिक खर्च, हर्जाने और कम्पनी के लाभांश के रूप में प्रति वर्ष काफी पूंजी स्वदेश ले जाते थे। विदेशी सरकार ने शिक्षा के प्रचार-प्रसार, उद्योगों की स्थापना और बुनियादी सुविधाओं को उपलब्ध कराने के लिए अपेक्षित प्रयास नहीं किए। उद्योगों की स्थापना में पूंजी की कमी, उद्यमशीलता का अभाव और तकनीकी कर्मचारियों की कमी भी बाधक बनी रही।

स्वतंत्रता के बाद सरकार ने देश के योजनाबद्ध और द्रुत विकास के लिए योजना आयोग की स्थापना की। 1951-52 से अब तक सात पंचवर्षीय योजनाएं और तीन वार्षिक योजनाएं कार्यान्वित की जा चुकी हैं। इस समय आठवीं पंचवर्षीय योजना कार्यान्वित की जा रही है। पहली योजना से लेकर आज तक सभी योजनाओं का प्रमुख लक्ष्य जनता का जीवन-स्तर उठाना, रोजगार के अधिक अवसर पैदा करना और उत्पादकता बढ़ाना रहा है। दूसरे शब्दों में, योजनाबद्ध विकास का अर्थ गरीबी दूर करना है। गरीबी दूर करने के लिए पहला काम गरीबी की परिभाषा करना और देश में अत्यन्त गरीबी का जीवन बिता रहे लोगों की गणना करना है।

सामान्य दृष्टि से विचार किया जाए तो गरीबी और अमीरी तुलनात्मक हैं। विश्व के सम्पन्न देशों जैसे अमरीका, जर्मनी, फ्रान्स, स्वीडन, स्विटजरलैंड और जापान आदि के गरीब का जीवन-स्तर हमारे देश के गरीब के जीवन-स्तर से अलग होता है। इस तरह गरीबी की रेखा की विश्व भर में स्वीकार्य कोई एक परिभाषा नहीं की जा सकती। विश्व की बात जाने दें, भारत जैसे विशाल देश में भी सभी राज्यों में गरीबी का स्तर समान नहीं है। पर्वतीय क्षेत्रों, आदिवासी इलाकों, रेगिस्तानी-पथरीले और सूखाग्रस्त क्षेत्रों के गरीबों और पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गरीबों के जीवन में अन्तर होना स्वाभाविक है।

विकसित देशों में हमारी तरह गरीबी की समस्या नहीं है। वहां बेरोजगारी और मंदी की समस्या है। वहां इनका समाधान सामाजिक सुरक्षा और आर्थिक क्षेत्र में कारगर उपायों द्वारा किया जाता है।

गरीबी की समस्या भारत सहित एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमरीका के कुछ देशों तक सीमित है। हमारे यहां प्रति व्यक्ति औसत आय 300 डालर यानी लगभग 9,000 रुपये है। देश के ग्रामीण क्षेत्रों में करोड़ों लोग ऐसे हैं, जिनके पास न तो खेती योग्य जमीन है, न अन्य कोई लाभकारी सम्पत्ति और न कोई रोजगार है। इन लोगों को बारहों महीने रोजगार भी नहीं मिलता। इनकी व्यथा का अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है।

गरीबी उन्मूलन के साथ गरीबी का निर्धारण करने और गरीबों की गणना करने की समस्या है। सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रोफेसर अमरत्य सेन का कहना है कि गरीबी की रेखा से नीचे रहने वालों का पता लगाना सरल कार्य नहीं है। इसके लिए सबसे पहले गरीबी का सूचक तैयार किया जाता है और फिर कुल जनसंख्या में गरीबों का पता लगाया जाता है। गरीबी का निर्धारण प्रति व्यक्ति वास्तविक आय को देखकर किया जाता है। इसके बाद यह देखा जाता है कि इस कसौटी पर कौन खरा उतरता है।

देश में गरीबी की रेखा का निर्धारण करने का पहला गंभीर प्रयास 1962 में कुछ प्रमुख अर्थशास्त्रियों और समाज शास्त्रियों के कार्यकारी दल ने किया। उन्होंने इसके लिए प्रति व्यक्ति भोजन, कपड़े, आवास, ईंधन और स्वास्थ्य की न्यूनतम खपत को आधार बनाया। उन्होंने पांच व्यक्तियों के परिवार के लिए ग्रामीण क्षेत्रों

में 1960-61 के मूल्यों पर 100 रुपये महीने अथवा 20 रुपये प्रति व्यक्ति की आय आवश्यक बताई। शहरी इलाकों के लिए उन्होंने इसे बढ़ाकर 25 रुपये प्रति व्यक्ति प्रतिमाह अथवा 125 रुपये प्रति परिवार प्रतिमाह निर्धारित किया।

सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री बी. ए. डांडेकर और नीलकंठ रथ ने शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में गरीबी निर्धारण के लिए प्रति व्यक्ति प्रति दिन भोजन में 2,250 कैलॉरी की खपत जरूरी बताई। उनके हिसाब से 1960-61 के मूल्यों पर इसके लिए ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति प्रति मास 15 रुपये (वार्षिक 180 रुपये) और शहरी क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति प्रति मास 22.50 रुपये (वार्षिक 270 रुपये) की आय जरूरी थी। साठ और सत्तर के दशक के मध्य गरीबी की रेखा के निर्धारण के लिए यही मानक चलते रहे।

छठी योजना के दौरान और उससे कुछ पहले से गरीबी हटाओ का प्रश्न देश की राजनीति और आर्थिक चिन्तन पर छाया रहा। 1979 में योजना आयोग के एक विशेष कार्यदल ने गरीबी निर्धारण के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 2,400 कैलॉरी और शहरी क्षेत्रों में 2,100 कैलॉरी की खपत योग्य आय आवश्यक मानी। अनुमान लगाया गया था कि 1973-74 के मूल्यों पर प्रति व्यक्ति प्रति दिन 2,400 कैलॉरी पर ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिमास 49.09 रुपये और 2,100 कैलॉरी पर (शहरी क्षेत्रों में) 56.64 रुपये खर्च आएगा। बाद के वर्षों में मुद्रास्फीति को देखते हुए 1987-88 में ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति प्रतिमाह 116 रुपये और शहरी क्षेत्र में 150 रुपये निर्धारित किये गए। आठवीं योजना के अनुसार गांवों में 131.80 रुपये और शहरी क्षेत्रों में लगभग 150 रुपये निर्धारित किये गये।

बुनियादी रूप से गरीबी निर्धारण के लिए अभी प्रति व्यक्ति प्रतिदिन कैलॉरी खपत की कसौटी का इस्तेमाल किया जाता है। मुद्रास्फीति को देखते हुए आय के पुराने अनुमान बदल गए हैं। छठी योजना में गरीबी की रेखा का आधार 6,400 रुपये था किन्तु समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई. आर. डी. पी.) के तहत सहायता के लिए पांच व्यक्तियों की औसत वार्षिक आय 4,800 रुपये या उससे कम होना आवश्यक है। अब 1973-74 को आधार-वर्ष मान कर 2,100 और 2,400 कैलॉरी खपत का मूल्य निकाल कर गरीबी का आकलन किया जा रहा है। मोटे अनुमानों के अनुसार इस समय गरीबी की रेखा का आधार 8,000 रुपये वार्षिक आय होगा।

गरीबी निर्धारण के आंकड़े बदल गए हैं, कसौटी बदल गई है, लेकिन गरीबी की समस्या अभी भी ज्यों की त्यों है। आठवीं पंचवर्षीय योजना की प्रस्तावना में यह स्वीकार किया गया है कि "हमारी जनसंख्या का एक तिहाई भाग मूलभूत न्यूनतम आवश्यकताओं से वंचित गरीबी की परिस्थितियों में रह रहा है।" उदार अर्थव्यवस्था के वातावरण में इनके प्रति राज्य की जिम्मेदारी और बढ़ जाती है। राज्य इनको पूरी सामाजिक सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकता क्योंकि उसके पास इस कार्य के लिए पर्याप्त साधन नहीं हैं। लेकिन देश के मानवीय और भौतिक साधनों का पूरा उपयोग करने के लिए इन लोगों को गरीबी के गर्त से निकालना जरूरी है।

आठवीं पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज में स्पष्ट कहा गया है, "भारत में नियोजित विकास का प्रमुख उद्देश्य गांवों से निर्धनता को दूर करना है। योजनाओं के आरंभ से ही इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर नीतियां और कार्यक्रम बनाए गए और उन्हें फिर से नया स्वरूप दिया गया। छठी योजना में गांवों की गरीबी की समस्या पर और अधिक ध्यान दिया गया था।" सातवीं योजना में गरीबी दूर करने की कुछ नई योजनाएं और कार्यक्रम तैयार किए गए। कुछ पुराने कार्यक्रमों में सुधार किया गया।

इस समय सरकार गरीबी दूर करने के लिए अनेक योजनाएं और कार्यक्रम चला रही है। इनमें से प्रमुख हैं: समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम, ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बाल विकास कार्यक्रम, सवेतन रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम और जवाहर रोजगार योजना। इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों को उत्पादक परिसम्पत्ति खरीदने या अपना काम धंधा शुरू करने के लिए सहायता और प्रशिक्षण दिया जाता है।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम छठी योजना में शुरू किया गया था। सातवीं योजना में प्राप्त अनुभवों और राज्य सरकारों के सुझावों पर इसमें परिवर्तन और सुधार किए गए।

ग्रामीण गरीबी को दूर करने या कम करने में इन कार्यक्रमों की भूमिका प्रमुख रही है। तथापि, इनमें से अधिकांश कार्यक्रम अपना उद्देश्य प्राप्त करने में पूरी तरह सफल नहीं रहे हैं। सातवीं योजना और उसके बाद के वर्षों में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की उपलब्धियों को नकारा नहीं जा सकता। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं को रोजगार प्रदान करने में इस योजना का काम अच्छा रहा है।

आठवीं योजना में विभिन्न रोजगार कार्यक्रमों के अन्तर्गत रोजगार के अवसरों को बढ़ाने, रोजगार वाले और अल्प रोजगार

वाले लोगों की उत्पादकता को बढ़ाने पर विशेष जोर दिया जा रहा है। इसी के साथ वर्तमान विशेष रोजगार कार्यक्रमों को क्षेत्र के अन्य विकास कार्यक्रमों के साथ मिलाया जा रहा है। सरकार ने इन कार्यक्रमों के लिए परिव्यय काफी बढ़ा दिया है।

गरीबी की समस्या शिक्षा, सफाई, उत्पादन वृद्धि और परिवार वृद्धि से जुड़ी है। दुर्भाग्यवश पिछली योजनाओं में सम्पूर्ण साक्षरता और जनसंख्या विस्तार को गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम का अभिन्न हिस्सा नहीं बनाया गया। इसका नतीजा यह हुआ कि परिवार वृद्धि के साथ अनेक परिवार फिर से गरीबी की रेखा के नीचे आ गए। पास-पड़ोस की सफाई और शिक्षा के अभाव में वह रोगों के शिकार हो गए और उनकी उत्पादकता कम हो गई। अतः यह बात भली भांति समझ ली जानी चाहिए कि परिवार-वृद्धि, सफाई और उत्पादकता के बीच अन्तरंग सम्बंध है।

आठवीं योजना में सरकार विकास कार्यक्रमों में स्वैच्छिक और स्थानीय संस्थाओं (पंचायत आदि) को व्यापक रूप से शामिल कर रही है। इन संस्थाओं के पदाधिकारियों को यह बात समझ लेनी चाहिए कि शिक्षा, परिवार नियोजन और सफाई की उपेक्षा करके वह गरीबी का उन्मूलन नहीं कर सकते। अगर वह इन विषयों की ओर ध्यान देंगे तो गरीबी की समस्या का स्वतः समाधान हो जाएगा।

22, मैत्री एपार्टमेंट्स,
ए/3, पश्चिम विहार,
नई दिल्ली

लघु कथा

वृक्ष ने कहा

✍ डा. मेहता नगेन्द्र सिंह

होली की रात। सारा गांव छक कर खाया-पीया। देर रात तक उछला-कूदा। ढोल-मृदंग की ताल पर जोगिरा भी गाया और रात के अंतिम पहर, भांग के नशे में धुत्त होकर सोने चला गया।

अचानक भूकम्प का एक शक्तिशाली झटका आया। क्षणभर में सारा गांव खण्डहर में बदल गया। जन-जानवर मर-पछड़ कर तितर-बितर हो गए। बारिश भी खूब जोरों से होने लगी। आंधी-तूफान का भयंकर रूप बड़ा ही डरावना लगने लगा, जो इस संकट में आग में घी का काम कर रहा था।

इने-गिने ही लोग बच पाए जो एक वट वृक्ष के नीचे आकर अपने थरथराते शरीर को किसी तरह सम्भालते हुए भगवान की दुहाई गाने लगे। बीच-बीच में, इस अनहोनी का कारण भी ढूंढ़ने लगे। किसी ने कहा, "गांव पर शीतला मां का प्रकोप है। बकरे की बलि चाहिए।" किसी ने कहा, "नहीं, काली-मंदिर का पुजारी भ्रष्ट है, जवान भक्तनियों पर बुरी नजर रखने लगा था।" किसी ने कहा, "नहीं, यह दुर्दिन मुखिया के दुष्कर्म का ही फल है।" जितने मुंह उतनी बातें।

त्राहि-त्राहि की इस रट के बीच वट-वृक्ष ने कहा, "नहीं, दुखियारो! ऐसी बात नहीं है। यह वनदेवी का प्रकोप है। कल, तुम्हारे ही कुछ मनचलों ने होलिका-दहन के लिए जंगल के शिशु वृक्षों को काट लिया था।"

ओ/50, डॉक्टर्स कालोनी,
कंकड़बाग,
पटना- 800020

गांव की गरीबी दूर करने में कुटीर उद्योगों की भूमिका

✍ डा. कु. पुष्पा अग्रवाल

ग्रामीण विकास की अवधारणा का उदय कृषि विकास के संदर्भ में अस्तित्व में आया और एक लम्बे समय तक भारत के कृषि विकास को ग्रामीण विकास का पर्याय समझा जाता रहा। वर्ष 1970 में ग्रामीण विकास की अवधारणा में मूलभूत परिवर्तन हुआ और समवर्ती योजनाओं में इसका क्षेत्र अपेक्षाकृत व्यापक कर दिया गया। विश्व बैंक के अनुसार ग्रामीण विकास ऐसे समन्वित कार्यक्रमों, क्रियाकलापों एवं नीतियों का समन्वित आधार है जिनके द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि और उससे सम्बन्धित क्षेत्रों के विकास, स्थानीय भौतिक एवं जनपूंजी के अनुकूलतम प्रयोग और ग्रामीण व्यक्तियों के रहन-सहन में सुधार के प्रयास किए जाते हैं। ग्रामीण विकास में राष्ट्रीय विकास के लाभों को ग्रामीण अंचलों में रहने वाले गरीब व्यक्तियों तक पहुंचाने की प्रक्रिया सम्मिलित होती है। इस प्रकार से ग्रामीण विकास का विचार कृषि विकास की तुलना में व्यापक है और कृषि विकास ग्रामीण विकास का एक आंशिक क्षेत्र मात्र है।

भारत एक ऐसा विकासशील देश है जहां श्रम का बाहुल्य और पूंजी का अभाव है। यहां गरीबी की सीमा-रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाले ग्रामीण गरीबों की संख्या 1960-61 में 13.60 करोड़ थी, जो 1977-78 में 25.30 करोड़ हो गई। किन्तु वर्ष 1989-90 में यह संख्या 16.90 करोड़ ही रह गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत सरकार की कमोबेश सभी पंचवर्षीय योजनाओं का उद्देश्य द्रुतगति से आर्थिक विकास, आत्मनिर्भरता की प्राप्ति, आर्थिक विषमता को दूर करना, गरीबी का निवारण एवं बेकारी की समस्या का समाधान करना रहा है। बेरोजगारी की समस्या का जन्म तब होता है जब श्रम की मांग की अपेक्षा श्रम की पूर्ति अधिक होने लगती है। भारत में ग्रामीण बेरोजगारी एक विकट समस्या है। भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के प्रारम्भ से ही बेरोजगारी हर योजना के अन्त में बढ़ती रही है। सातवीं योजना में सरकार ने चार करोड़ लोगों को और आठवीं योजना में साढ़े छह करोड़ लोगों को रोजगार देने का लक्ष्य निर्धारित किया है। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र में श्रम की समस्या के समाधान के लिए अतिरिक्त रोजगार जुटाने की सम्भावना ग्रामीण क्षेत्र में ही है। इन योजनाओं के दौरान कृषि उत्पाद की दर में हुई वृद्धि रोजगार की दर में हुई वृद्धि के अनुपात में बहुत कम रही। अतः ग्रामीण बेरोजगारी को दूर करने और निर्धनता की समस्या को सुलझाने के लिए यह अनिवार्य है कि स्थानीय रूप से उपलब्ध साधनों का प्रयोग करते हुए कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाए जिससे बेरोजगारों को रोजगार मिल सके और घर का प्रत्येक सदस्य अपने अवकाशकाल में अतिरिक्त कार्य करके पारिवारिक आय की वृद्धि में योगदान दे सके। मात्र खेती द्वारा सबको रोजगार दे पाना सम्भव नहीं है।

बढ़ती हुई ग्रामीण जनसंख्या को रोजगार उपलब्ध कराने, गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाली आबादी को इस सीमा से ऊपर उठाने, आर्थिक विषमता कम करने एवं बढ़ती हुई शहरीकरण की समस्या के समाधान का एकमात्र विकल्प है—कुटीर उद्योग। महात्मा गांधी ने समाज की जो परिकल्पना की थी उसमें मशीनों की स्थिति गौण थी। राजनैतिक संघर्ष के दौरान ही उन्होंने रचनात्मक कार्यों के रूप में खादी और चरखे को महत्व दिया था। अगस्त 1936 में उन्होंने 'हरिजन' में लिखा था—"अगर गांव मिट गया तो हिन्दुस्तान ही मिट जाएगा—बड़े उद्योग धन्धों का प्रचलन होने से गांव वालों का किसी न किसी रूप में शोषण होगा। इससे प्रतियोगिता और सामान की खपत का सवाल पैदा हो जाएगा। यहां तो खेती के साथ-साथ ऐसे उद्योग होने चाहिए जो घर-घर में चल सकें और जिनके लिए बड़ी पूंजी की जरूरत न हो।"

इस दृष्टि से ग्रामीण बेरोजगारी और गरीबी को दूर करने के लिए कृषि के अतिरिक्त पशुपालन को प्राथमिकता दी जा सकती है। इस व्यवसाय को खेती के साथ-साथ किया जा सकता है। इन पशुओं में दुधारू, बोझा ढोने वाले, खेती एवं यातायात की दृष्टि से उपयोगी पशु शामिल हैं। पिछले तीन दशकों में इनकी संख्या में 8.5 करोड़ की वृद्धि हुई है। दुधारू पशुओं की संख्या में औसतन 25 प्रतिशत और भेड़ बकरी में 60 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। किन्तु माल ढोने वाले पशुओं जैसे घोड़ा, गधा और ऊंट आदि की संख्या में गिरावट आई है।

जहां तक दुधारू पशुओं का सम्बन्ध है उनसे प्राप्त दूध से अनेक उत्पाद तैयार होते हैं जैसे दूध, दही, पनीर, खोया, मक्खन, घी आदि घर में प्रयुक्त करने के अतिरिक्त पशुपालक परिवार दूध एवं दुग्ध उत्पादों का व्यवसाय कर सकता है जो आर्थिक

दृष्टि से बहुत ही लाभप्रद है। यदि एक बेरोजगार व्यक्ति पांच दुधारू पशु भी पाल ले तो उसके परिवार का निर्वाह सुविधापूर्वक हो सकता है और परिवार की गरीबी दूर हो सकती है।

दूध के अतिरिक्त पशुओं के गोबर से प्राप्त होने वाली खाद मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाती है। इससे गोबर गैस प्राप्त करके खाना पकाने के ईंधन और घर में प्रकाश की व्यवस्था के लिए प्रयुक्त होने वाले तेल की बचत की जा सकती है। खादी ग्रामोद्योग एवं सरकार इसका संयन्त्र लगाने के लिए वित्तीय सहायता भी प्रदान करती है। देश को खाद से लगभग 270 करोड़ रुपये वार्षिक की सामग्री प्राप्त होती है तथा रासायनिक खाद को आयात करने में होने वाली विदेशी मुद्रा की भी बचत होती है।

इतना ही नहीं पशुओं से प्राप्त होने वाला चमड़ा ही चमड़ा उद्योग का आधार है। इससे गांव के मोची जूते, बैग, पर्स एवं इसी प्रकार की अन्य चीजें बनाते हैं। चमड़े की सफाई, धुलाई और रंगाई अनेकों को रोजगार देती है। खेतों में हल चलाने के अतिरिक्त बीज आदि खेतों तक ले जाने और कटाई के उपरान्त फसल को भण्डारण अथवा विक्रय स्थान तक ले जाने में पशुओं का महत्वपूर्ण योगदान है।

दुधारू पशुओं के अतिरिक्त घोड़े, गधे, ऊंट जहां माल ढोने के काम आते हैं वहां यातायात सम्बन्धी सुविधा भी प्रदान करते हैं। घर में पाला गया प्रत्येक पशु आर्थिक दृष्टिकोण से लाभप्रद है। आज भी लगभग तीन लाख गांव यातायात के आधुनिक साधनों से दूर हैं। बंगलौर के इन्डियन इन्सटीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट के अनुसार भारत में डेढ़ करोड़ के लगभग बैलगाड़ियां हैं, जिनमें चार हजार करोड़ रुपए की पूंजी लगी है। इसी इन्स्टीट्यूट के अनुसार जितना माल पशुओं और पशुगाड़ियों द्वारा ढोया जाता है उतना हमारी रेल व्यवस्था द्वारा भी नहीं ढोया जाता है और कम से कम अगले 50 वर्षों तक तो यातायात में पशुधन का प्रयोग होने की सम्भावना है ही।

इन दुधारू और मालढोवक पशुओं के अतिरिक्त भेड़, बकरी, सुअर, खरगोश पालन भी ग्रामीण गरीबी को दूर करने और रोजगार जुटाने में सहायक हैं। भेड़ और खरगोश की ऊन की धुलाई, रंगाई और कताई ऊन उद्योग का मूल आधार है। खरगोश की ऊन बहुत महंगी बिकती है। इनके अतिरिक्त विभिन्न स्थानों पर मुर्गी-पालन, मछली-पालन, मधुमक्खी-पालन, रेशम के कीड़े-पालन आदि भी कुटीर उद्योगों के रूप में अपनाए जा रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में इनके व्यापक प्रसार, अधिकतम उपयोग एवं लाभान्वित होने की तकनीकी जानकारी प्रदान करने की आवश्यकता है। जिन ग्रामों में पशुपालन को कुटीर उद्योग के रूप में अपनाया जा रहा हो वहां सरकार की ओर से पशुओं में फैलने वाली बीमारियों के उपचार के लिए समुचित साधन जुटाए जाने की एवं अच्छी नस्ल के पशु उपलब्ध कराने की आवश्यकता है। उनके लिए सामूहिक चरागाह, पौष्टिक चारे और दाने की व्यवस्था की जानकारी दी जानी चाहिए।

पशुपालन के अतिरिक्त कृषि पर आधारित कुटीर उद्योगों में ताड़ गुड़, गया गुड़, खांडसारी, फल, सब्जी-प्रशोधन, घानी तेल, पापड़, बड़ी, अचार, चटनी आदि बनाने के कार्य को भी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। यद्यपि कुछ गांवों में उपरोक्त कार्य किए जा रहे हैं तथापि आधुनिक तकनीक की सामान्य जानकारी प्राप्त होने से जनसमुदाय के अधिक मात्रा में लाभान्वित होने की सम्भावना है। ताड़गुड़ प्रमुख रूप से राजस्थान और महाराष्ट्र के गांवों में तैयार किया जाता है। वर्ष 1991-92 में 118.50 लाख रुपए का ताड़गुड़ तैयार किया गया। पूर्ववर्ती वर्ष की तुलना में इसमें 248 प्रतिशत से भी अधिक वृद्धि हुई है। इसी प्रकार से घानीतेल के क्षेत्र में भी 1991-92 में हुए उत्पाद में पूर्ववर्ती वर्ष की तुलना में 121.52 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

ताड़गुड़ के अतिरिक्त इसके फल से तेल की प्राप्ति होती है। केरल और अंडमान में ताड़ की सफल खेती ने ताड़ के तेल के उत्पादन के लिए सम्पूर्ण देश में सम्भावनाएं जागृत कर दी हैं। ताड़ की व्यापारिक खेती के लिए शिमोगा (कर्नाटक), पूर्वी गोदावरी (आन्ध्र प्रदेश) और कनकावली (महाराष्ट्र) में विशेष परियोजनायें प्रारम्भ की गई हैं। आशा है कि 1994 में ये वृक्ष अपना पहला उत्पाद देने लगेंगे जिससे ताड़तेल कुटीर उद्योग इन स्थानों पर प्रारम्भ और विकसित हो सकेंगे। ताड़ के वृक्ष की आयु लगभग 100 वर्ष है। अतः यह कई पीढ़ियों के लिए वरदान कहे जा सकते हैं।

गन्ने का गुड़ एंवं खांडसारी प्रायः सभी गन्ना उत्पादक क्षेत्रों के गांवों में बनाई जाती है। चीनी मिलों द्वारा खड़ी फसलें खरीद लेने के कारण इस उद्योग में कुछ कमी आई है। यद्यपि कृषि पर आधारित विभिन्न खाद्य कुटीर उद्योगों का विकास हो रहा है तथापि आधुनिक तकनीकी ज्ञान, हल्की मशीनों जिन्हें एक दो आदमी ही चला सकें और वित्तीय सहायता इनके विकास में बहुत प्रोत्साहक होंगी। वैसे भी आज के जीवन के तीव्र प्रवाह में खाद्य-आधारित उद्योगों के विकास की पर्याप्त सम्भावनाएं हैं।

कुटीर उद्योग के क्षेत्र में महिलाओं और बच्चों का योगदान भी कम नहीं है। टोकरी बनाना, चटाई बनाना, निवाड़ बुनना,

नाड़े बुनना, आसन बुनना, सजावटी सामान जैसे मोतियों के झाड़, खिलौने बनाना, गुड़िया बनाना, सिलाई, कताई-बुनाई (ऊन और धागे से) किरोशिए का काम, कशीदाकारी, मिट्टी के बर्तन बनाना, मसाले पीसना, मनकों की माला बनाना इत्यादि कितने ही काम गांवों की महिलाएं खाली समय में बातें करते-करते कर लेती हैं।

अन्य कुटीर उद्योग धन्धों में बढ़ई, कुम्हार, लोहार, ऊन संबधी कार्य एवं सूती वस्त्रों की बुनाई, दरी एवं कालीन बनाना, बेंत, बांस सरकंडों एवं सिकरी का सामान बनाना, रस्सी बटना, हस्तशिल्प आदि के व्यवसाय आते हैं।

ऊन कुटीर उद्योग

भारत में ऊन कुटीर उद्योग की स्थिति दिनों-दिन खराब होती जा रही है क्योंकि एक तो अच्छी नस्ल की भेड़ें सुलभ नहीं हैं दूसरे न तो गांवों के निकट चरागाह हैं और न ही सभी पशु पालकों के समीपस्थ अच्छे बाजार। अतः धीरे-धीरे लोग इस व्यवसाय से कटते जा रहे हैं। परिणामतया बेरोजगारी और गरीबी बढ़ रही है। भारत के पश्चिमोत्तर अंचलों में सामान्यतया लोग भेड़-बकरी पालन करते हैं और ऊन उद्योग चलाते हैं। वर्ष 1950 में यहां लगभग 65 प्रतिशत परिवार इस उद्योग में संलग्न थे, किन्तु वर्तमान में 7.25 प्रतिशत परिवार ही इस उद्योग से संबद्ध रह गए हैं।

बढ़ई का काम

बढ़ई का काम गांव के प्रमुख धन्धों में माना जाता है। खेती में प्रयुक्त होने वाले अधिकांश उपकरणों का निर्माण बढ़ई ही करता था। इनमें हल, जुआ व चड़स प्रमुख हैं। यातायात के लिए बैलगाड़ी, तांगा, इक्का, हथठेला, बुनकरों के लिए अलग-अलग प्रकार के अड्डे, रुई ओटने के लिए चरखी, धुनने के लिए धुनकी, घर-गृहस्थी के लिए बेलन, पीढ़ी, चारपाई, मचिया, दरवाजे, खिलौने, लट्टू आदि बनाते हैं।

कुम्हार

कुम्हार मिट्टी के बर्तन हांडी, चाटी, मटका, नाद, कूंडा, तौला, कुल्हड़, पाले सराई, दीपक, सकोरे, खिलौने तथा सजावटी सामान बनाते हैं।

लोहार

ये लोग खेती के लिए खुरपा, फाल, फावड़ा, गंडासा, चारा काटने के लिए हसिये, दरांती और घर-गृहस्थी के लिए चिमटा, तवा, कड़छी, सिन्डानी आदि बनाते हैं।

देश के गांवों में फैली बेकारी और गरीबी की विकराल समस्या के समाधान के लिए कुटीर उद्योग के रास्ते पर चलकर एवं उपेक्षित हो रहे उद्योगों को प्रोत्साहन देकर बहुत से उपाय खोजे जा सकते हैं क्योंकि इसमें अधिक रोजगार की सम्भावनाएं हैं। इन उद्योगों में एक तो कम पूंजी का विनियोग होता है और दूसरे स्थानीय संसाधनों का उपयोग अधिकतम किया जाता है। फिर कुशल, अर्धकुशल एवं अकुशल लोगों तथा परम्परागत शिल्पियों के लिए भी रोजगार के अवसर खुलते हैं। अतः ग्रामीण गरीबी को दूर करने के लिए कुटीर उद्योगों से बेहतर साधन दूसरा नहीं हो सकता। अब तो कुटीर उद्योगों के उत्पाद की लोकप्रियता शहरी जीवन में भी बड़ी तेज़ी के साथ बढ़ रही है।

सूती, ऊनी, रेशमी खादी के अतिरिक्त मिट्टी के बर्तन, साबुन अगरबत्तियां, खाद्य-सामग्रियां, शहद, हाथ कागज की फाइल, ग्रीटिंग कार्ड, मूढ़े, पीढ़े, दिवालगिरी, कठपुतली, कलमकारी, बन्दनवार, कुशनकवर, बंधेज की साड़ियां, दुपट्टे, लखनवी कढ़ाई के परिधान आदि की बहुत मांग है। राजस्थानी गोटे के काम का दिनों-दिन फैशन बढ़ रहा है।

अधिकतर तो निर्माता ही विक्रेता भी होता है। इनके उत्पाद में गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों, ग्रामीण शिल्पियों समाज सेवी संस्थाओं तथा सहकारी समितियों के योगदान के अतिरिक्त विभिन्न राज्यों में कार्यरत ग्रामोद्योग बोर्डों का भी हाथ रहता है।

यद्यपि गरीबी को मिटाने के लिए गांधी जी की विचारधारा को दृष्टिगत रखते हुए बहुत कुछ किया गया है तथापि भीड़ के बढ़ते सैलाब ने सम्पन्नता का किनारा अभी तक नहीं पकड़ने दिया है। बेरोजगारी बढ़ी है, परम्परागत कला और शिल्प की अवनति हुई है। ग्रामीण कारीगरों को अकुशल श्रमिकों के रूप में जीविकोपार्जन के लिए बाध्य होना पड़ा है। आज गांवों का युवक रोजगार की तलाश में शहर की ओर दौड़ रहा है। यदि कुटीर उद्योग का स्वप्न पूरी तरह साकार हो जाए तो शहरों की ओर दौड़ की यह होड़ भी रुक सकती है। कुटीर उद्योगों का एक सुखद पहलू यह भी है कि श्रम और पूंजी के सम्बन्ध परस्पर मधुर रहने के कारण इसमें श्रमिक असन्तोष की बिजलियां नहीं कड़कती और न ही तालाबन्दी और चक्का जाम के बादल ही गरजते हैं। वरन् इन से उस क्षेत्र का सही अर्थों में विकास होता है जो अन्ततः यहां रहने वालों की सम्पन्नता और कौशल में अभिवृद्धि करके गरीबी और अभावों को दूर करता है।

एन 25 बी, दूसरी मंजिल,
जंगपुरा एक्सटेंशन, नई दिल्ली

गरीबी दूर करने के योजनाबद्ध प्रयास

✍ डॉ. अवधेश कुमार श्रीवास्तव

सामान्यतया निर्धनता का अर्थ उस सामाजिक प्रक्रिया से है जिसमें समाज का एक भाग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं कर सकता। जब समाज का एक बड़ा भाग न्यूनतम जीवन-स्तर से वंचित रहता है तो कहा जाता है कि समाज में व्यापक निर्धनता विद्यमान है। निर्धनता की यह समस्या भारत सहित विश्व के सभी विकासशील देशों में देखी जा सकती है। विकसित देशों में भी निर्धनता का अस्तित्व है किन्तु वह विकासशील देशों की निर्धनता की तुलना में बहुत कम है। सभी समाजों में निर्धनता को परिभाषित करने के प्रयास किये गये हैं और निर्धनता का आधार न्यूनतम या अच्छे जीवन-स्तर की कल्पना से सम्बन्धित है। इसी के आधार पर न्यूनतम जीवन-निर्वाह स्तर और अच्छे जीवन स्तर के बीच एक रेखा खींची गयी जिसे निर्धनता रेखा अथवा गरीबी की रेखा की संज्ञा दी जाती है। प्रत्येक देश में न्यूनतम जीवन-निर्वाह का स्तर अलग-अलग निर्धारित किया गया है और यह चेष्टा की गयी है कि वे समाज के औसत जीवन-निर्वाह स्तर के निकट हो। इस प्रकार ये परिभाषाएं समाज में विद्यमान असमानताओं को दर्शाती हैं और उस सीमा का बोध कराती हैं जिस सीमा तक कोई समाज इन्हें सहन करने के लिए तैयार है। भारत में निर्धनता की सामान्यतः स्वीकृत परिभाषा उचित जीवन स्तर की अपेक्षा न्यूनतम जीवन-स्तर पर बल देती है।

भारत में निर्धनता सम्बन्धी अध्ययन

विभिन्न अर्थशास्त्रियों एवं संस्थाओं द्वारा निर्धनता निर्धारण के अलग-अलग परिमाप बताये गये हैं। इस सभी अध्ययनों का आधार 2250 कैलॉरी के बराबर खाद्य मूल्य है। श्री बी. एस. मिन्हास एकमात्र ऐसे अर्थशास्त्री हैं जिन्होंने 1956-57 और 1967-68 की अवधि में ग्रामीण निर्धनों के प्रतिशत में कमी की ओर संकेत किया है। इसके विपरीत पी. डी. ओझा और प्रणव के. वर्धन ने ग्रामीण निर्धनों के अनुपात में वृद्धि का संकेत किया है। उनके विचार से परिवर्तन की यह दिशा देश में बढ़ते हुए दरिद्रीकरण की सूचक है। डांडेकर और रथ ने 1960-61 और 1967-68 के दौरान ग्रामीण तथा नगरीय दोनों निर्धन वर्गों में स्थिर अनुपात बताया है। इन्होंने अनुमान लगाया था कि उक्त अवधि के मध्य ग्रामीण निर्धनों की संख्या 13.5 करोड़ से बढ़कर 16.6 करोड़ और नगरीय निर्धनों की संख्या 4.2 करोड़ से बढ़कर 4.9 करोड़ हो गयी। मनटेक अहूलवालिया का मत है कि भारत के पिछले दो दशकों के अनुभव से निर्धनता की प्रवृत्ति में वृद्धि का संकेत नहीं मिलता। सामान्तया यह देखा गया है कि ग्रामीण निर्धनता का आघात कृषि के अच्छे कार्यकाल के दौरान कम हो जाता है और कृषि की दृष्टि से बुरे वर्षों में बढ़ जाता है। सातवें वित्त आयोग के अनुसार 1970-71 में 27.7 करोड़ व्यक्ति निर्धनता रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे थे। इनमें से 22.5 करोड़ ग्रामीण क्षेत्रों में और 5.2 करोड़ शहरी क्षेत्रों से सम्बन्धित थे। डा. कोस्टा ने निर्धनता के तीन स्तर बताए हैं — अति दीन, दीन और निर्धन। उनके अनुसार 1963-64 में 6.2 करोड़ व्यक्ति अतिदीन, 10.4 करोड़ दीन और 16.2 करोड़ निर्धनता का जीवन जी रहे थे। अति दीनता का जीवन गुजारने वालों का अनुपात 13.2 प्रतिशत और निर्धनता में रहने वालों का 34.9 प्रतिशत था। छठी योजना में 1979-80 के आधार पर कुल निर्धनों का अनुमान 31.7 करोड़ आंका गया था जिसमें 26 करोड़ ग्रामीण और 5.7 करोड़ नगरीय निर्धन थे। योजना आयोग ने गरीबी सम्बन्धी जो अनुमान प्रस्तुत किये हैं उसके अनुसार विभिन्न वर्षों में गरीबी सम्बन्धी जो अनुभव प्रस्तुत किये हैं उसके अनुसार विभिन्न वर्षों में गरीबी की स्थिति को सारिणीबद्ध ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है:

गरीबी की स्थिति से सम्बन्धित योजना आयोग के अनुमान (प्रतिशत में)

क्षेत्र	1972-73	1977-78	1983-84	1987-88	1989-90
ग्रामीण	54.1	51.2	40.1	33.4	28.2
नगरीय	41.2	38.2	28.1	20.1	19.3
अखिल भारत	51.4	48.3	37.4	29.9	25.8

(आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार, 1991-92, पृ.-141)

योजना आयोग द्वारा लगाये गये अनुमान इस बात का संकेत हैं कि ग्रामीण और नगरीय दोनों क्षेत्रों में गरीबी की प्रतिशतता में कमी आयी है तथा अखिल भारतीय स्तर पर भी गरीबी के प्रतिशत में कमी हुई है। गरीबी का प्रतिशत जो 1972-73 में 51.4 था वह घटकर 1989-90 में 25.8 प्रतिशत रह गया जो गरीबी की दिशा में किये जा रहे प्रयासों की सफलता को इंगित करता है। फिर भी कुल जनसंख्या के एक बड़े भाग का निर्धनता रेखा के नीचे जीवन-यापन करना भारतीय अर्थव्यवस्था में असमानता की स्थिति का संकेत करता है। गरीबी के सन्दर्भ में विभिन्न अर्थशास्त्रियों और संस्थाओं द्वारा जो भी अनुमान लगाये गये हैं उनमें एकरूपता का अभाव है। अर्थशास्त्रियों के इन अनुमानों को तैयार करने की विधि के बारे में मतभेद हो सकता है और इस कारण उनके अनुमानों में अन्तर हो सकते हैं परन्तु दो बातों पर सहमति हो चुकी है—प्रथमतः निर्धनता-रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या का प्रतिशत कम नहीं हुआ है और द्वितीय, सम्पूर्ण जनसंख्या का एक बड़ा भाग आज भी निर्धनता रेखा के नीचे जीवन-यापन करने को विवश है। यह बात निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो जाने पर कि ग्रामीण भारत में घोर निर्धनता का भयानक स्तर विद्यमान है आज आवश्यकता इस बात की है कि गरीबों के लाभ के लिए और विशेषकर ग्रामीण-निर्धनों के लिए, जो संख्या में कहीं अधिक हैं, किन्तु शहरी निर्धनों की भांति साफ दिखाई नहीं पड़ते, ठोस उपाय ढूढ़ने की नीति पर ध्यान दिया जाना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि केवल ग्रामीण क्षेत्रों में ही निर्धनता है बल्कि इसका आशय यह है कि शहरी क्षेत्र की निर्धनता के साथ ग्रामीण क्षेत्र की निर्धनता दूर करने के विशेष प्रयास किये जाने चाहिए।

योजनाएं एवं निर्धनता निवारण सम्बन्धी प्रयास

योजनाओं के उद्देश्यों के अध्ययन से इस बात का स्पष्ट अभास मिलता है कि जन-साधारण के जीवन-स्तर को उन्नत करना योजना के प्रमुख लक्ष्यों में से एक है। प्रथम पंचवर्षीय योजना जिस आर्थिक वातावरण में आरंभ की गयी थी उस समय देश के समक्ष खाद्यान्न समस्या अत्यन्त विकट रूप में उपस्थित थी, अतः कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी। द्वितीय योजना ने ऐसा वातावरण कायम करने का प्रयास किया जिससे गरीब लोगों की उन्नति हो सके। तृतीय योजना भी कृषि को प्राथमिकता प्रदान करती रही। चौथी योजना में जन सामान्य और निर्बल वर्गों की दशा को प्रोन्नत करने की बात कही गयी और इस उद्देश्य के लिए "रोजगार तथा शिक्षा" उपलब्ध कराने पर विशेष बल दिया गया। निम्न आय वर्गों की दशा सुधारने के लिए अनिवार्य समझा गया कि देश में सभी को राष्ट्रीय न्यूनतम आय प्राप्त हो। यह स्वीकार किया गया कि छोटे किसान और भूमिहीन मजदूर कृषि-श्रमजीवी वर्ग का मुख्य भाग हैं परन्तु इनके पास कोई उत्पादक आधार नहीं है और वे अपनी आजीविका के लिए मजदूरी-रोजगार पर निर्भर हैं। निर्देशात्मक सिद्धान्त के रूप में चौथी योजना में स्पष्ट लिखा गया कि कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में, सबसे निर्धन का पहले ध्यान रखा जाता है और विकास के लाभों को आयोजित विनियोग द्वारा इस प्रकार प्रवाहित किया जाता है कि अल्पविकसित प्रदेशों और समाज के पिछड़े हुए वर्गों के पास पहुंचे। 1971 के संसदीय चुनाव में 'गरीबी हटाओ' के नारे ने इस समस्या की ओर ध्यान केन्द्रित किया। पांचवीं योजना प्रलेख में 1960-61 की कीमतों के आधार पर 20 रुपये प्रति व्यक्ति प्रतिमाह को न्यूनतम उपभोग स्तर मानते हुए 22 करोड़ से अधिक लोगों के निर्धनता रेखा के नीचे जीवन-यापन करने का अनुमान लगाया गया था। 'राष्ट्रीय न्यूनतम आय' की धारणा 1970-71 की कीमतों पर 40 रुपये प्रति व्यक्ति प्रतिमाह को आधार स्तर मानती है। निर्धनता के विश्लेषण की स्पष्टतम् अभिव्यक्ति पांचवीं योजना द्वारा इन शब्दों में की गयी — "बेरोजगारी, अल्प रोजगार और अनेक उत्पादकों, विशेषकर कृषि का निम्न संसाधन-आधार निर्धनता के मुख्य कारण है. . . . घोर निर्धनता की समाप्ति अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर में एक निश्चित त्वरण के उपलक्ष्य के रूप में प्राप्त नहीं की जा सकती। पांचवीं योजना में यह अनिवार्य हो गया कि बेरोजगारी, अल्परोजगार और विशाल निम्नस्तरीय निर्धनता पर सीधा प्रहार किया जाए।" छठी योजना में उल्लेख किया गया कि 1977-78 में ग्रामीण क्षेत्रों में कुल जनसंख्या का 48 प्रतिशत और नगरीय क्षेत्रों में 41 प्रतिशत निर्धनता रेखा के नीचे था। छठी योजना में निर्धनता की परिभाषा पोषण की आवश्यकताओं के आधार पर की गयी—ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 2400 कैलॉरी और नगरीय क्षेत्रों के लिए 2100 कैलोरी का मानदण्ड रखा गया। छठी योजना में निर्धनता रेखा की परिभाषा—1979-80 की कीमतों पर की गयी। इसके लिए ग्रामीण क्षेत्रों में 76 रुपये प्रति व्यक्ति मासिक व्यय और शहरी क्षेत्रों में 88 रुपये प्रति व्यक्ति को आधार माना गया। इस प्रकार छठी योजना में अनुमान लगाया कि 1979-80 में 31.7 करोड़ व्यक्ति निर्धनता-रेखा के नीचे जीवन-यापन कर रहे थे। इस योजना में निर्धनता-रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या के प्रतिशत को 48.4 से घटाकर 38.9 प्रतिशत तक लाने का लक्ष्य रखा गया। योजना की मध्यावधि समीक्षा में यह दावा किया गया कि योजना के पहले दो वर्षों में लगभग 5.7 करोड़ व्यक्ति निर्धनता निवारण कार्यक्रम के अन्तर्गत निर्धनता रेखा पार कर गये हैं।

सातवीं योजना में 'गरीबी हटाओ कार्यक्रम' की समीक्षा के

आधार पर उल्लेख किया है—"अब इस बात के प्रमाण उपलब्ध हैं कि आर्थिक विकास और निर्धनता विरोधी कार्यक्रमों ने निर्धनता की समस्या पर करारी चोट की है।" राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण द्वारा तैयार किये गये अनुमानों के अनुसार 1977-78 और 1983-84 के दौरान 340 लाख व्यक्ति निर्धनता रेखा पार कर गये। इस प्रकार निर्धनता रेखा के नीचे रहने वाली जनसंख्या का प्रतिशत 51.2 से घटकर 40.4 रह गया। सातवीं योजना के दौरान आशा की गयी कि कुल निर्धनों की संख्या जो 1984-85 में 27.3 करोड़ थी, कम होकर 1989-90 में 22.1 करोड़ रह जायेगी और इनमें अधिकतर उन्नति ग्रामीण क्षेत्रों में होगी।

निर्धनता के निवारण हेतु सातवीं योजनावधि में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी योजना, भूमि सुधार आदि पर कुल 9974.22 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया जिसका विवरण इस प्रकार है:—

अवसर प्रदान करने वाली विकासशील गतिविधियों को प्रोत्साहन देना तथा रोजगार के अवसर पैदा करने के अतिरिक्त उन लोगों की आय में, जो किसी व्यवसाय से जुड़े हैं, वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गरीबी निवारण हेतु अपनाये गये विभिन्न कार्यक्रमों के बावजूद भी देश में निर्धनता की स्थिति बनी हुई है और जनसंख्या का एक बड़ा भाग आज भी निर्धनता रेखा से नीचे जीवन-यापन करने को विवश है। भारतीय योजनाएं अभी तक अतिदीनता की अवस्था को दूर नहीं कर पायीं, गरीबी हटाने की बात तो दूर रही। संभवतः इसका मुख्य कारण योजनाकारों द्वारा यह मान लेना रहा है कि विकास द्वारा राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी और इसके साथ कराधान और सार्वजनिक कल्याण नीतियों के फलस्वरूप गरीबों का जीवन स्तर उन्नत हो जायेगा।

आलोचकों के अनुसार जिन योजनाकारों ने छठी योजना

सातवीं योजना परिव्यय

(करोड़ रु.)

	कार्यक्रम विवरण	कुल	केन्द्र	राज्य	संघ राज्य क्षेत्र
1.	एकीकृत ग्रामीण विकास और सम्बद्ध कार्यक्रम	3473.99	1864.38	1609.61	—
2.	राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम	2487.47	1250.81	1236.66	—
3.	सामुदायिक विकास और पंचायती राज संस्थाएं	416.15	—	396.30	19.85
4.	विशेष रोजगार कार्यक्रम	509.24	—	509.24	—
5.	ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम	1743.78	1743.78	—	—
6.	भूमि सुधार	395.83	36.71	353.88	5.24
7.	एकीकृत ग्रामीण उर्जा	47.76	5.91	37.15	4.70
	योग	9974.22	4901.59	4142.84	29.70

आठवीं योजना में पूर्व से चलाये जा रहे कार्यक्रमों के अलावा गरीबी निवारण हेतु रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना प्राथमिक आवश्यकता स्वीकार की गई है। अगले दस वर्षों में सभी को काम उपलब्ध कराने का लक्ष्य है। इसका अर्थ यह है कि प्रतिवर्ष 10 लाख अतिरिक्त रोजगार के अवसर उपलब्ध करने होंगे। बंजर भूमि के विकास, परिवर्तित कृषि, भवन निर्माण, ग्रामीण सड़कों पर कार्य, लघु पैमाने पर उत्पादन आदि जैसे रोजगारोन्मुखी

तैयार की उनमें आत्मविश्वास की कमी इस बात से लगाई जा सकती है कि उन्होंने निर्धनता-रेखा की धारणा को और भी नीचे कर इसे दीनता के स्तर पर लाने का प्रयास किया। इस प्रकार गरीबी की नयी परिभाषा देकर उसे दूर करने का यह प्रयास एक पराजयवादी दृष्टिकोण है। आलोचकों का मत है कि योजना आयोग ने निर्धनता के दुष्चक्र और समृद्धि के दुष्चक्र पर सीधा और एक साथ प्रहार करने में हिचकिचाहट दिखाई है। जहां

योजनाकारों द्वारा निर्धनता उन्मूलन हेतु सिंचाई और छोटे उद्योगों के द्वारा रोजगार बढ़ाने के लिए विनियोग-प्रोग्राम निश्चित किये हैं वहीं वे समृद्धि के दुष्चक्र को तोड़ने के लिए प्रभावी उपचार निर्धारित करने में असफल रहे हैं।

निर्धनता-निवारण सम्बन्धी बहुत सी योजनाएं कार्यान्वयन के दौरान विकृत रूप धारण कर लेती हैं या इन्हें छोड़ दिया जाता है या इनके बारे में ढुलमुल नीति अपनायी जाती है। अतः यह अनिवार्य है कि ग्राम विकास के कार्यक्रम पंचायतों के अधीन न रखे जाए। इसके लिए विकास परिषदें स्थापित की जानी चाहिए जिनमें बहुसंख्यक प्रतिनिधित्व छोटे तथा सीमांत किसानों, कारीगरों तथा भूमिहीन श्रमिकों को देना चाहिए। जब तक विकास परिषदों के ढांचे में परिवर्तन नहीं किया जाता तब तक गरीबी निवारण हेतु अपनाई जाने वाली नीतियों का अनुपालन सुनिश्चित करना कठिन है।

सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि योजनाकारों ने निर्धनता की समस्या को गंभीरता से महसूस किया और निर्धनता निवारण हेतु अनेक कार्यक्रम भी चलाये। यह अवश्य कहा जा सकता है कि भारतीय योजनाएं इस समस्या का पूर्ण रूप से समाधान नहीं कर पायी हैं। किन्तु इसके पीछे अनेक कारण उत्तरदायी रहे हैं जैसे जनसंख्या में वृद्धि, साक्षरता व शिक्षा का अभाव, निर्धनों द्वारा निर्धनता निवारण के विभिन्न कार्यक्रमों का सही ढंग से लाभ न उठाया जाना, कार्यक्रमों का दोषपूर्ण कार्यान्वयन आदि। इन सबके बावजूद हम योजनाबद्ध प्रयास द्वारा बड़ी संख्या में निर्धनों को निर्धनता रेखा से पार कराने में सफल हुए है तथापि आज भी एक बड़ी संख्या में लोग निर्धनता-रेखा के नीचे जीवनयापन करने को बाध्य हैं। फिर भी स्वतंत्रता के बाद से इस दिशा में जो प्रयास किये गये है उनसे निर्धनता निवारण की दिशा में एक नई आशा की किरण का संचार हुआ है और आशा की जानी चाहिए कि निकट भविष्य में भारतीय योजनाएं निर्धनता पर करारा प्रहार करने में सफल होंगी।

कुलपति आवास परिसर,
काशीविद्यापीठ, वाराणसी

फिर भी कुछ ऐसा लगता है

गुलाबचन्द वात्सल्य

खुशियों के त्यौहार मने
फिर भी कुछ ऐसा लगता है।
कि त्यौहारों के मेले में भी
त्यौहार मनाना बाकी है —

सजते रहे, द्वार-आंगन-घर
फिर भी कुछ ऐसा लगता है,
जहां रह रहे हैं हम सब वह
द्वार सजाना बाकी है—

दुनियां तो मेरे साथ ही है
फिर भी कुछ ऐसा लगता है,
दूर बहुत मैं निकल गया हूं
पास ही आना बाकी है—

जाग चुके हैं बहुत लोग
फिर भी कुछ ऐसा लगता है
जो जागे हैं, शायद उनको भी
और जगाना बाकी है—

लाखों दीपक जलते तो हैं
फिर भी कुछ ऐसा लगता है
कि अंधकार के घर में कोई
दीप जलाना बाकी है—

विकास प्रेस,
छोटी बाजार, छिन्दवाड़ा (म. प्र.)
480001

कहानी

पुल

✍ डॉ. शीतांशु भारद्वाज

नित्य की भांति वह ऑफिस जाने की तैयारी करने लगी। ड्रेसिंग टेबल पर आकर उसने चेहरे पर पाउडर का हल्का-सा पॅफ दिया और अन्य अत्याधुनिक सौन्दर्य प्रसाधनों का भरपूर प्रयोग किया। होठों पर लिपस्टिक रचाई और मेज से पर्स उठा लिया। तभी उसे अपनी स्थिति का अहसास हो आया।

बाहर बालकोनी पर खड़े दोनों बच्चे ऑफिस जाते हुए पापा को टाटा कर रहे थे। वह भी उन्हीं के पास जा खड़ी हुई।

मुल्कराज स्कूटर स्टार्ट कर चुके थे। बबली-बबलू उसी प्रकार हाथ हिला रहे थे। राज ने वहीं से बच्चों की ओर देखा। हवा में हाथ हिला कर उन्होंने भी "बाइ!" किया। देखते- ही देखते उनका स्कूटर कालोनी की पतली सड़क से मुख्य सड़क की दिशा में मुड़ गया।

वह भी रोजाना पति के साथ ही ऑफिस जाया करती थी। मुल्कराज उसे छोड़ कर अपनी मिनिस्ट्री चल दिया करते। तब घर में बच्चों की देखभाल बुआजी करती थीं। किंतु जब से उसने ऑफिस जाना छोड़ा है, घर की व्यवस्था में बहुत-कुछ परिवर्तन आ गया है। बुआजी को गांव भेज दिया गया है। बच्चों की देखभाल वह स्वयं ही किया करती है। एक प्रकार से वह पूरी तरह से "घरु औरत" बन कर रह गई है।

क्षितिज का छोर भले ही मिल जाए किंतु हमारे मन के अंदर का पता नहीं चल पाता। वह भी तो मुल्कराज के अंदर की थाह नहीं ले पाई। पति की खुशी की खातिर वह सचमुच में ही नौकरी छोड़ देती यदि वे उस पर झूठा लांछन न लगाते।

वह एक सार्वजनिक संस्थान में वरिष्ठ सहायिका के पद पर कार्य कर रही थी। मुल्कराज मिनिस्ट्री में ऑफिस सुप्रिन्टेंडेंट के पद पर काम किया करते हैं। उन दोनों को किसी प्रकार का कोई अभाव न था। गृहस्थी की गाड़ी मजे-मजे से चल रही थी। एक बार काम की अधिकता के कारण उसे ऑफिस में ही रुक जाना पड़ा था। उसी समय उसे लेने के लिए वहां मुल्कराज आ गए थे। उसकी हंसी की खनक उनके कलेजे पर नश्तर-सी चुभ गई थी।

"आइए, राज साहब!" बनर्जी ने उनका स्वागत किया था।

मुल्कराज के होंठों पर फीका हास्य उभर आया था।

" राज, चाय तो चलेगी न!" उसने पति से पूछा था।

"नहीं।" मुल्कराज का फटे बांस-सा स्वर था। वे घड़ी देखने लगे थे।

"माफ कीजिएगा, राज साहब! ये कुछ लेट हो गई हैं!" बनर्जी उनसे क्षमा मांगने लगे थे, हम लोग कुछ पेंडिंग केसेज. . . . ।

"कोई नहीं!" मुल्कराज ने इजाजत चाही थी, "अगर इजाजत हो तो. . ।"

"भई वाह! इसमें इजाजत की क्या बात है?" बनर्जी मुस्करा दिये थे।

अपने बॉस की ओर मुस्कान फेंक कर वह पति के साथ बाहर आ गई थी। रास्ते भर उन दोनों के बीच चुप्पी छाई रही थी। मुल्कराज उसी दिन से अपने आप में ही कुछ घुटे-घुटे-से रहने लगे थे।

"क्या बात है, राज?" एक दिन उसने पति की उस घुटन का रहस्य जानना चाहा था।

"मैं नही चाहता कि तुम नौकरी करो।" मुल्कराज के अंदर का संशय पिघलने लगा था।

"नौकरी न करूं?" वह हतप्रभ सी रह गई थी।

"हां!" मुल्कराज उसे उपदेश पिलाने लगे थे, "नारी का मंदिर तो उसका अपना घर हुआ करता है। उसे उसी मंदिर की पुजारिन होना चाहिए।"

"सच बताना राज!" उसने पति के मन की थाह लेनी चाही थी, "तुम्हें यह यकायक क्या सूझा?"

"किसी गैर आदमी के साथ तुम्हारा हंसना-बोलना मुझे गंवारा नहीं है।" मुल्कराज ने अपने मन की बात कह डाली थी।

सुन कर वह सुन्न पड़ गई थी। अगले ही क्षण वह मुस्करा दी थी, "छोड़ो भी राज! इन छोटी-छोटी बातों में क्या रक्खा?"

"लेकिन मैं तो इन्हें बड़ी मानता हूं न।" मुल्कराज के माथे पर ढेर सारी सलवटें उभर आई थीं, एक नन्हीं-सी चिनगारी भी बहुत बड़े अग्नि-कांड की शुरूआत हो सकती है।

"तो मैं सचमुच नौकरी छोड़ दूं?" उसने गंभीरता से पूछा था।

"हां।"

"कहीं इस मंहगाई के जमाने में कोई तंगी-वंगी. . . . .।"

"नहीं इस छोटे-से परिवार के लिए मेरा वेतन ही बहुत होगा।" मुल्कराज तो पहले से ही निश्चय किए हुए थे।

अगले दिन मुल्कराज ने उसके आगे टाइप किया हुआ त्यागपत्र रख दिया था। कांपते हाथ से उसने उस पर अपने हस्ताक्षर कर दिए थे।

किंतु वह भी इतनी मूर्ख नहीं थी। जमी-जमाई हुई नौकरी को वह यों ही कैसे छोड़ देती? ऑफिस पहुंच कर उसने अपने संस्थान के डाइरेक्टर को सारी बातें बतला दी थी। उन्होंने उस त्यागपत्र को फाड़ कर उसे तीन महीने का अवकाश प्रदान कर दिया था। बाद में वह अपनी छुट्टियां बढ़वाती रही। तब से वह घर में ही रहती आ रही है।

नीचे से बस के हार्न का परिचित स्वर आया। दोनों बच्चों को लेकर वह नीचे चल दी। उन्हें बस में बिठला कर वह ऊपर चली आई।

दिन का डेढ़ बज चुका था। किचन का काम निबटा कर वह बड़े कमरे में चली आई। दोनों हाथों का सिरहाना बनाए हुए वह कोच पर लेट गई। उसी समय कॉल बेल कर्राई!

उठ कर उसने दरवाजा खोल दिया। बाहर मुल्कराज थे।

"क्यों?" उसकी आंखों में पति के लिए प्रश्न-चिन्ह उभर आया।

"बनर्जी तो नहीं आए?" पूछते हुए मुल्कराज अंदर चले आए।

"कौन बनर्जी?" उसके माथे पर बल पड़ गए।

"वही, तुम्हारा कभी का बॉस।"

"अरे!" उसने आंखें नचाईं, "क्यों आएंगे भला?"

मुल्कराज अपने शुष्क होठों पर जीभ फेरने लगे। धप्-से वे वहीं कोच पर बैठ गए।

वह किचन से पति के लिए शर्बत ले आई। उसने पति की बगल में बैठते हुए कहा, "वहम की कोई दवा नहीं होती, राज! लगता है, कोई हमारी बसी-बसाई हुई गृहस्थी में आग लगा रहा है।"

मुल्कराज से वह शर्बत नहीं पिया गया। ताव में आकर वे कोच से उठ गए। उन्होंने विषभरा व्यंग्य किया, "मैं सब समझती हूं। कहा भी गया है न कि स्त्री चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं. . . .।"

वह आवाक् रह गई। कानों पर विश्वास ही नहीं हो पा रहा था। बाद में देखा तो मुल्कराज चल दिये थे। बालकोनी पर जाकर उसने पति को आवाज देनी चाही। किंतु जब तक उनका स्कूटर बहुत दूर जा चुका था। वह हाथ मलती ही रह गई।

शाम ढल आई थी। बच्चे सामने के पार्क में खेल रह थे। नित्य की भांति मुल्कराज भी अपने ऑफिस से घर लौट आए। किचन में चाय बनाती हुई वह नहीं समझ पा रही थी कि पति को सही राह पर कैसे लाया जाए।

"राज!" उसने पति के आगे चाय की प्याली रख दी, "सच बताना! अगर मैं भी कहूं कि आप अपने ऑफिस की किसी लड़की से. . . . . ।"

इस पर मुल्काराज पूरी तरह से सुलग गए। उसी मनोदशा में वह कमरे से उठ कर दूसरे कमरे में चल दिये। पति-पत्नी के बीच तनाव की खाई दिन-प्रति-दिन बढ़ती ही गई। बच्चे नहीं समझ पा रहे थे कि यह सब क्या हो रहा है! वे कभी रूठी हुई मम्मी को देखते तो कभी मुंह फुलाए हुए पापा को।

एक दिन उसने पति को कुरेद ही लिया, "राज, तो क्या मैं सचमुच ही तुम्हारी दृष्टि में. . . "

"हां कानों पर विश्वास न भी हो तो आंखें तो धोखा नहीं दे सकतीं न!" मुल्कराज का तल्ख स्वर था।

"फिर ठीक है" उसे लगा कि पति के आगे उसकी दाल नहीं गल पाएगी। उसने कहा, "तुम चाहो तो मैं अलग रह लेती हूं।

वह रविवार का दिन था दोनों बच्चों को तैयार करंके वह अटैची में कपड़े ठूंसने लगी।

"हम कहां जाएंगे, ममा?" छोटे बबलू ने उसकी टांगों से लिपट कर पूछा।

"नानी के पास।" उसके हाथ उसी प्रकार कपड़े ठूंसते रहे।

उसी शाम वह बच्चों को लेकर मां के पास चल दी। अगले दिन उसने अपना ऑफिस ज्वाइन कर लिया। बनर्जी की सेवाओं का स्थानांतरण किसी दूसरे ऑफिस में हो गया था। वरिष्ठता के आधार पर वह उस सीट पर काम करने लगी।

तीन महीने यों ही बीत गए। वह उसी केबिन में बैठती जिसमें कभी बनर्जी बैठा करते थे। हर समय उसका ध्यान रैक पर पड़े हुए टेलीफोन पर ही रहता। देर-सबेर पति न जाने कब उसे फोन कर दें।

पत्नी की अलहदगी के बाद से मुल्कराज भटकन की राह पर चलने लगे थे। व्यर्थ में ही वे अपने अधीनस्थों पर झुंझला उठते। टाइपिस्ट लड़कियों को अपनी केबिन में बुलाकर वे उनके काम

में मीन-मेख निकालने लगते। एक दिन किसी लड़की को छेड़े जाने की बात ऊपर बड़े साहब तक जा पहुंची थी। इस पर उन्होंने उन्हें बुरी तरह से डांट-फटकार दिया।

लंच का समय था। केबिन से निकल कर मुल्कराज कैंटीन की ओर जा रहे थे। गलियारों में उन्हें वही लड़की मिल गई। छूटते ही उसने कहा, "राज साहब, आप तो अच्छे-भले घर के हैं। फिर भी. . . . . । क्या आपकी मां-बहनें नहीं हैं?"

मुल्कराज के ऊपर जैसे घड़ों पानी पड़ने लगा। लड़की का यह व्यंग्य उनके अंतर पर नश्तर-सा लगा गया। गर्दन लटकाए हुए वे केबिन में घुस गए। उनके सिर में जोर का दर्द हो आया था। बार-बार उनके कानों में पत्नी के शब्द गूंजते जा रहे थे: "सच बताना राज, यदि मैं कहूं कि आप भी अपने ऑफिस की लड़कियों के साथ . . . ." उनकी अंतरात्मा उनसे प्रश्न करने लगी। अपराधी कौन है? वे अथवा उनकी पत्नी? धीरे-धीरे उन्हें इस बात का अहसास होने लगा कि स्वयं ही वे अपनी बसी-बसाई हुई गृहस्थी को आग लगा रहे हैं।

मुल्कराज ने कांपते हाथ से एक जाने-पहचाने नंबर को डायल किया।

"हैलो!" उधर से वही चिर-परिचित स्वर आया।

"माफ करना डार्लिंग! मैं राज बोल रहा था।" मुल्कराज की आवाज कांप रही थी।

"ओह राज!" उधर से पत्नी ने भी गहरी सांस खींची, "मैं भी उम्मीद लगाए हुई थी कि कभी-न-कभी तो. . . . ।"

"आज तक मैं भुलावे में था।" मुल्कराज उसी प्रकार पत्नी से क्षमा मांगने लगे, "सच! आज ही नींद से जागा हूं।"

. . . . . ।

"तो मैं समझ लूं कि तुम मुझे माफ कर चुकी हो?" मुल्कराज ने पूछा। "यह भी कोई पूछने की बात है, राज?" पत्नी के स्वर में अपनापन भर आया।

"मैं अब तुम्हारे ही आफिस आ रहा हूं।" कह कर मुल्कराज ने फोन रख दिया। आधे घंटे बाद वे पत्नी के ऑफिस में जा पहुंचे।

"क्या पियेंगे, ठंडा या गर्म?" उसने चपरासी के लिए घंटी बजाते हुए पूछा।

"अब तक मैं बहुत कुछ पीता रहा हूं।, डार्लिंग! मुल्कराज का हाथ पेपरवेट से खेलने लगा।

चपरासी अंदर आ गया था। उसने उससे दो कॉफी लाने को कहा।

अब वे दोनों आमने-सामने बैठे हुए थे। मुल्कराज को अपने दुर्व्यवहार पर मन-ही मन पछतावा हो रहा था। उधर, पत्नी के गालों पर भी तो आंसू ढरकते जा रहे थे।

"अरे, ये क्या?" मुल्काराज़ पत्नी के आंसू पोंछने लगे।

"यह मेरा नारीत्व गल रहा है, राज। इसे गल लेने दो।" उसका गला रुंध आया, "तुम क्या समझोगे कि नारी की सार्थकता एकाकीपन में नहीं, बल्कि अर्धांगिनी बनने में ही है।"

मुझे माफ कर दो, डार्लिंग!" मुल्कराज उसके पांवों की ओर झुकने को हुए।

"अरे रे!" उसने उनके हाथ पकड़ लिए। अगले ही क्षण उसकी आंखों से पति के लिए प्यार की वर्षा होने लगी। उसने कहा, "सुबह के ही तो भूले हो न!"

बाहर चपरासी खांस खंखार दिया। छट से उसने पति के हाथ छोड़ दिए।

संध्या के पांच बज चले थे। उसने मेज की दराजें बंद की और अपना पर्स उठा लिया। उसने पति की ओर देखा, "चलें?"

"हां मुल्कराज भी उसी के साथ उठ खड़े हुए।

मुल्कराज स्कूटर स्टार्ट कर चुके थे। आंखों पर गॉगल्स चढ़ा कर वह भी उनके स्कूटर के पीछे बैठ गई। देखते -देखते स्कूटर मुख्य सड़क पर दौड़ने लगा।

"किधर चलें?" मुल्कराज ने उससे पूछा।

"जिधर भी ले चलो!" वह फिस्स-से हंस दी।

मुल्कराज ने स्कूटर का गियर बदला। आगे के चौराहे से उन्होंने स्कूटर बाईं ओर मोड़ लिया। चंदेक मिनटों में उनका स्कूटर नदी के पुल पर दौड़ने लगा। पीछे बैठी हुई पत्नी को लगने लगा जैसे कि नदी के दो पाटों की भांति वह पुल उन्हें भी आपस में जोड़ रहा हो।

138, विद्या विहार, पिलानी,
राजस्थान—333031

गांवों की समस्याएं और उनके समाधान के प्रयास

✍ हरीश पुरी

भारत की लगभग तीन-चौथाई आबादी गांवों में रहती है। देश की आजादी के बाद आधी शताब्दी बीत जाने पर भी हमारे गांवों की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ है। अभी भी यहां गंभीर चुनौती के रूप में व्याप्त हैं अशिक्षा, बेरोज़गारी, जमीन की समस्याएं और विकास की मूलभूत आवश्यकताएं।

इन मूलभूत आवश्यकताओं के पूरा न होने के कारण देश के गांवों में बड़े स्तर पर गरीबी व्याप्त है। हमारे ग्रामीण समाज में सदियों से चली आ रही पिछड़ेपन की उदासी आज भी दिखाई पड़ती है। देश के कुल गांवों में आधे से अधिक दूर-दराज के इलाकों में स्थित हैं। कृषि भारत का मुख्य व्यवसाय है। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकतर लोग खेती-बाड़ी के व्यवसाय से जुड़े हैं और यही उनकी आजीविका का मुख्य साधन है। कृषि हमारी अर्थ-व्यवस्था की रीढ़ है। आजादी के बाद से ही पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास को उच्च प्राथमिकता दी गयी है। भूमि सुधारों को प्रारंभ से ही पंचवर्षीय योजनाओं का अभिन्न अंग बनाया गया है। भूमि के क्षेत्र में जो प्रमुख समस्याएं व्याप्त थीं उनमें से कुछ हैं: अदातली पेचीदगियां, फर्जी व बेनामी कागजात, जमीन का सही रिकार्ड उपलब्ध न होना और जमीन का अनेक टुकड़ों में बंटा होना तथा कम उपज के साथ-साथ खेती के परंपरागत तरीकों का अपनाया जाना।

हालांकि सरकार भूमि सुधारों की दिशा में काफी तेजी से कार्य कर रही है लेकिन इन कार्यक्रमों का वांछित असर न होने के कारण पिछले कुछ वर्षों में कार्यक्रमों पर अमल की सीमा तय की गई और एक समयबद्ध कार्यक्रम लागू किया गया। जमीन पर जोतने वाले का मालिकाना हक होगा इसे कानूनी जामा पहनाने के लिए व्यवस्था की गई और अब तक एक करोड़ दस लाख से अधिक किसानों को 247 लाख एकड़ जमीन का मालिकाना अधिकार मिल चुका है। अधिकतम भूमि-सीमा कानून लागू होने के बाद 72.56 लाख एकड़ जमीन अतिरिक्त घोषित की जा चुकी है और इसमें से 48.86 लाख एकड़ भूमि 46 लाख से अधिक भूमिहीनों के बीच वितरित की जा चुकी है। जमीन प्राप्त करने वालों में लगभग 59 प्रतिशत अनुसूचित जातियों व जन जातियों के हैं। जमीन के रिकार्ड को अद्यतन बनाने के लिए विशेष प्रयास किए जा रहे हैं, किसानों को ऐसी पास बुक दी जा रही है जिनमें जमीन का सही हिसाब-किताब, रिकार्ड, नाम, खसरा आदि दर्ज है। मध्य प्रदेश जैसे राज्यों में तो इन रिकार्डों का कम्प्यूटरीकरण भी कर लिया गया है। जमीन के बंटवारे को रोकने के लिए बड़े पैमाने पर चकबंदी की गई है। पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में चकबंदी के लाभ दिखाई पड़ने लगे हैं और बिहार, उड़ीसा, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश में ये प्रयास जारी हैं। देश भर में अब तक 600 लाख हेक्टेयर भूमि की चकबंदी की जा चुकी है।

भूमिहीनों और गरीबों के बीच जो फालतू जमीन वितरित की गई है वह अपेक्षाकृत कम उपजाऊ है। इसलिए केन्द्र सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं के अंतर्गत इन लोगों को प्रति हेक्टेयर 2500 रुपये की वित्तीय सहायता दी जा रही है।

भूमि समस्याओं के बाद गांवों की संभवतः दूसरी सबसे बड़ी समस्या बेरोजगारी है। ऐसा नहीं है कि इस दिशा में कुछ कार्य किया ही न गया हो। इस पहलू पर सरकार विशेष ध्यान देती रही है। सत्तर के दशक के दौरान ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया गया और इसके लिए अक्तूबर 1978 से 2300 सामुदायिक विकासखंडों से समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम की शुरूआत की गई। दो वर्ष बाद देश के सभी 5004 खण्डों में यह कार्यक्रम लागू कर दिया गया। विश्व बैंक ने भी इसके लिए काफी सहायता दी। सरकार के जून 1990 के मूल्यांकन के अनुसार सर्वेक्षण के अंतर्गत 29 प्रतिशत लाभार्थी अनुसूचित जातियों के, 16 प्रतिशत अनुसूचित जनजातियों के और 20 प्रतिशत महिलाएं थीं। इसके अलावा 9 प्रतिशत लाभार्थी ऐसे थे जो अत्यंत निर्धन परिवारों के थे। मार्च 1991 तक के आंकड़ों के अनुसार बैंकों ने इस कार्यक्रम के अंतर्गत 28.98 लाख लाभार्थियों को 1190.3 करोड़ रुपये की राशि ऋण के रूप में और 808.87 करोड़ रुपये सबसिडी के रूप में दिए हैं।

अप्रैल 1990 में संशोधन करके इसमें 30 प्रतिशत की बजाय 50 प्रतिशत लाभार्थियों का अनुसूचित जनजाति या जाति का होना और पहले के 30 प्रतिशत के बजाय 40 प्रतिशत महिलाओं को होना आवश्यक कर दिया गया। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का उद्देश्य समाज के सबसे कमजोर वर्गों को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाना है और इसके अंतर्गत छोटे और सीमान्त किसानों, भूमिहीन खेतिहर मजदूरों, ग्रामीण दस्तकारों और गांवों के अति निर्धन लोगों को शामिल किया गया है।

ग्रामीण विकास की एक और महत्वपूर्ण योजना है जवाहर रोजगार योजना। इसके अंतर्गत लोगों को रोजगार देने की व्यवस्था है। समाज के कमजोर लोगों को काम उपलब्ध कराना इसका उद्देश्य है। मजदूरी नकद या अनाज के रूप में दी जाती है। आठवीं योजना में इस मद में राशि 14 करोड़ से बढ़ा कर 30 करोड़ कर दी गयी।

इसमें कोई शक नहीं कि गरीबी दूर करने के सरकार के कार्यक्रमों का लाभ हुआ है और ग्रामीण रोजगार की स्थिति में सुधार हुआ है। 1972-73 में निर्धनता की रेखा से नीचे जीवन यापन करने वालों का प्रतिशत 51.5 था जो 1987-88 में घटकर 29.9 रह गया। अनुमान है कि सातवीं योजना के अंत तक लगभग 25.8 प्रतिशत हो गया है। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम और जवाहर रोजगार योजना के अंतर्गत रोजगार उपलब्ध कराने की जो योजनाएं हैं उनमें से प्रमुख हैं — हथकरघा, दस्तकारी, खादी और ग्रामोद्योग, लघु उद्योग, रेशम कीट पालन और राज्य सरकारों द्वारा चलाए गए विशेष ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम।

इन कार्यक्रमों का फायदा आमतौर पर उन लोगों और वर्गों तक उतना नहीं पहुंचा है जिनके लिए कार्यक्रम बनाए गए हैं। प्रबंध में अव्यवस्था, संसाधनों में धांधली, भाई भतीजावाद और लाल फीताशाही से इन कार्यक्रमों का पूरा लाभ लोगों तक नहीं पहुंच सका है। जवाहर रोजगार योजना जवाहर लाल नेहरू की शताब्दी जयन्ती पर 1989 में शुरू की गयी। हालांकि सरकारी तौर पर इसकी समीक्षा प्राप्त नहीं हुई है लेकिन एक स्वयंसेवी संगठन 'सेंटर फार इंडियन डेवलपमेंट स्टडीज' द्वारा इस कार्य में अनेक खामियां सामने आई हैं। पहली तो यह कि हर गांव के लिए संसाधन कम हैं। साथ ही जो भी राशि उपलब्ध कराई जाती है उससे ऐसे कार्यक्रमों का कुछ हिस्सा ही पूरा हो पाता है और वर्ष में कुछ ही दिनों के लिए वह भी कुछ ही परिवारों के लिए रोजगार जुटाया जा सकता है। साथ ही मजदूरी इतनी कम है कि गुजारा चलना मुश्किल है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास के लिए यह आवश्यक है कि गांवों में रोजगार के अवसर जुटाए जायें, बेरोजगारी दूर की जाए, उन्हें आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाया जाए जिससे उनका और गांव का समन्वित विकास हो। इस उद्देश्य के लिए हमें नए सिरे से विचार करना आवश्यक है।

ग्रामीण विकास की अनेक योजनाएं लागू करने के बावजूद गांवों के लोग अपने अधिकारों और विकास के लिए दूसरों पर निर्भर हैं। यह निर्भरता और अज्ञानता ही विकास की प्रक्रिया में बाधक है। इस दृष्टि से प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम पर जोर देना आवश्यक है। देश में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत 1978 में शुरू किया गया। प्रौढ़ शिक्षा के अंतर्गत 15 से 35 वर्ष आयु का हर वर्ग शामिल था जो अशिक्षा के कारण आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़ा हुआ है। ऐसे लोगों की संख्या अभी भी बहुत है जो पढ़ना-लिखना नहीं जानते। इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है और अशिक्षित परिवार का दृष्टिकोण शिक्षा के प्रति उदार नहीं बन पाता। यह एक कुचक्र है और ऐसे परिवारों में बच्चों और आने वाली पीढ़ियों के अशिक्षित बने रहने की संभावना काफी अधिक होती है। इसलिए प्रौढ़ों को अनौपचारिक शिक्षा देने के कार्यक्रम को न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम में शामिल किया गया।

निरक्षर प्रौढ़ों में बड़ी संख्या अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं की है। प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत साक्षरता के अतिरिक्त व्यावसायिक प्रशिक्षण और चेतना जागृति पर भी बल दिया जाता है। ग्रामीण प्रौढ़ों को शिक्षित करने के कार्यक्रम में ग्राम विकास से संबंधित सभी एजेंसियां हाथ बटाती हैं। इस दृष्टि से प्रौढ़ शिक्षा के अंतर्गत उन सभी सामाजिक संस्थाओं को शामिल किया जा सकता है जो मानव जीवन से संबंधित हैं और किसी न किसी रूप में उसे प्रभावित करती हैं। प्रौढ़ शिक्षा का लक्ष्य यह है कि देश भर के गांव और लोग राष्ट्र के समेकित विकास में सक्रिय भूमिका निभा सकें। लोगों के जीवन स्तर और सोच के तरीकों में गुणात्मक परिवर्तन लाने के लिए शिक्षा की निरन्तरता बनाए रखना आवश्यक है। शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत व्यावसायिक प्रशिक्षण, घर का रख-रखाव, कारीगरों के लिए प्रशिक्षण, महिलाओं के विकास के लिए समान अवसर उपलब्ध कराना, स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार और कार्य करने की बेहतर शर्तों का प्रावधान शामिल है। साक्षरता प्रसार के लिए आवश्यक है कि प्रौढ़ों को शिक्षा के लिए सही ढंग से प्रेरित किया जाए। वे शिक्षा की उपयोगिता तभी समझ सकेंगे जब यह उनकी आवश्यकताओं से जुड़ी हो। इस रूप में हमें देश के गांवों के लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं का उनके शिक्षा परिवेश में समावेश करना होगा जिससे शिक्षा में उनकी दिलचस्पी बढ़े।

शिक्षा के बाद अब गांवों के परिवेश में सफाई तथा स्वास्थ्य सुविधाओं पर नजर डालनी होगी। हमारे गांव प्रदूषण से मुक्त हैं तथा वहां का हर आदमी शारीरिक श्रम करता है। अतः शहरी लोगों के मुकाबले उसकी बीमारी की चपेट में आने की संभावनाएं कम ही रहती हैं। यदि गांवों में सफाई और एहतियात बरतने आदि

की जानकारी दी जा सके तो वहां के माहौल को काफी सुधारा जा सकेगा। गांवों में स्वास्थ्य सेवाओं में वृद्धि करके आधुनिक चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराना भी आवश्यक है। बच्चों को टीके और पौष्टिक आहार ग्रामीण अंचल में भी वितरित करना जरूरी है। स्वास्थ्य संबंधी जानकारी भी उन्हें उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

खेती को आधुनिक रूप देने के लिए यह आवश्यक है कि ग्रामीण स्तर पर ही किसानों को कृषि संबंधी जानकारी देने की व्यवस्था की जाए जिसमें कृषि यंत्रों का रख रखाव तथा प्रयोग, मिट्टी की जांच, उन्नत किस्म के बीजों का प्रयोग तथा कुटीर उद्योग की जानकारी, मत्स्य पालन, पशुपालन, मधुमक्खी पालन, रेशम के कीड़े पालना, मुर्गी पालन, कीट पतंगों से फसलों की रक्षा, फलों की खेती आदि की जानकारी यदि किसानों को समय समय पर दी जाती रहे तो न केवल उत्पादन बढ़ेगा बल्कि राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि होगी। इस कार्य की जिम्मेदारी योजना विभाग, विकास खण्ड अधिकारी तथा ग्राम पंचायतों को सौंप दी जाए। चुनाव प्रक्रिया में थोड़ा सा ग्राम स्तर पर परिवर्तन आवश्यक है। ग्राम प्रधान शिक्षित अथवा पढ़ा लिखा हो ताकि उसकी जागरूकता ग्राम विकास में सहायक हो।

हमारे गांवों के पिछड़ेपन के मूल कारण न केवल आर्थिक बल्कि सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक रहे हैं। इनमें राजनीतिक अस्थिरता, अकुशलता, निर्णय का अभाव, सामाजिक रूढ़िवादिता, अंध विश्वास, भाग्य पर भरोसा, हाट व्यवस्था की कमी, निर्धनता का दुष्चक्र, पूंजी-निर्माण दर में कमी, उद्यमशीलता एवं प्रबंधकीय योग्यता का अभाव है। ग्रामीण क्षेत्रों के विकास कार्यों की बहुत आवश्यकता है क्योंकि हमारी निर्धनता को दूर करने का यही एकमात्र उपाय है। पिछले दशक अर्थात 1983 से 1992 के बीच विश्व बैंक के अध्ययन के अनुसार दुनिया में चीन की अर्थव्यवस्था में सबसे अधिक विकास हुआ है और वार्षिक विकास दर 9.7 प्रतिशत आंकी गई है। एशिया के चार और बड़े देशों-हांगकांग, सिंगापुर, दक्षिण कोरिया और ताईवान में वार्षिक विकास दर 6 से 9 प्रतिशत हुई है। लेकिन विकास किसी एक देश की बपौती नहीं। पूर्व एशियाई देशों के बड़े देशों को चुनौती देता अफ्रीकी देश बोत्सवाना इस दौर में काफी आगे रहा है और वहां विकास दर 8.4 प्रतिशत वार्षिक रही है। भारत के आंकड़े लगभग 5 प्रतिशत वार्षिक दर बताते हैं और इस कमी की काफी हद तक जिम्मेदार हमारे गांवों में विकास की कमी है।

गांवों के विकास के लिए सरकारी दृष्टिकोण में दो नीतियां अपनाई गई हैं— एक तो निर्धारित योजनाओं में पिछड़े क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जाए और दूसरे कृषि एवं उद्योगों के विकास के लिए व्यापक सहायता और रियायतें उपलब्ध कराई जाएं। इस नीति के अंतर्गत विभिन्न गांवों में विशेष रूप से पिछड़े क्षेत्रों को चुना गया और उनके लिए बिजली, रियायती दरों पर ऋण, भूमि आबंटन, करों में छूट आदि की सुविधाएं दी गईं। परिवहन, सड़कें बनाने और रेल पटरियां बिछाने के काम को भी प्राथमिकता दी जा रही है ताकि आवागमन बढ़े और गांवों में तैयार माल तथा कृषि पदार्थ शहरों में या अन्य कस्बों में उचित मूल्य पर बेचे जा सकें।

लेकिन देखने में आता है कि आजादी के 47 वर्षों के दौरान किए गए तमाम प्रयासों और योजनाओं के बावजूद गरीबी की समस्या और जटिलता ज्यों की त्यों बनी हुई है। गांवों के मूल रूप में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। अभी गांवों के लोग घोर अशिक्षा, भुखमरी और गरीबी का जीवन जी रहे हैं। बढ़ती जनसंख्या के अनुपात में विकास प्रक्रिया अधिक गतिशील न होने से ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में गतिरोध जैसी स्थिति बनी हुई है। नवयुवकों में गांव छोड़ कर नगरों की ओर पलायन की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है।

संभवतः इस सब का जवाब देश के जाने-माने अर्थशास्त्री डाक्टर आदिशेषैया के इस निष्कर्ष में है कि अनेक लोग अभावग्रस्त हैं जबकि कुछ लोगों के पास सम्पत्ति अपने हक और जरूरत से ज्यादा है। डाक्टर आदिशेषैया के अनुसार हमारे गांवों में गरीबी का मुख्य कारण वहां परिसम्पत्तियों का अभाव है। सरकारी तथा गैर सरकारी सर्वेक्षणों के व्यापक उद्धरण देकर उन्होंने सिद्ध किया है कि अभाव के स्तर में कमी लाने के लिए योजना के कार्यकलापों में, दृष्टिकोण में और प्रक्रिया में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना होगा। उनके अनुसार असमानता से गरीबी पैदा होती है और गरीबी से असमानता बढ़ती है। उनका कहना है कि हमें एक ऐसा आन्दोलन शुरू करना होगा जिससे धनी अपने धन का और शक्तिशाली अपनी शक्ति का अधिकांश हिस्सा स्वेच्छा से त्याग दे ताकि गरीबों को संगठित होने और शोषण के विरुद्ध संघर्ष की वास्तविक आजादी मिल सके।

ग्रामीण विकास के प्रति सरकार कितनी जागरूक और चिंतित है यह इसी बात से सिद्ध हो जाता है कि सरकार ने गांवों में स्वशासन व्यवस्था को मजबूत करने के लिए कारगर कदम उठाए हैं। हाल ही में पास किए गए संविधान संशोधन विधेयक से गांवों

में पंचायतों के गठन की व्यवस्था की गई है और उसमें अनुसूचित जातियों और जन जातियों के प्रतिनिधियों के साथ-साथ 30 प्रतिशत महिलाओं का होना आवश्यक कर दिया गया है। पंचायती राज व्यवस्था लागू करने से समानता और सामाजिक सद्भाव को बढ़ावा देने में मदद मिलेगी, ग्राम सभा में सभी वर्गों के मेल-जोल से लोगों में भाईचारा बढ़ेगा और स्थानीय उन्नति में मदद मिलेगी। जवाहर रोजगार योजना तथा समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम जैसी योजनाओं को लागू करने का दायित्व ग्राम पंचायतों को सौंपने से आवश्यकतानुसार स्थानीय लोगों को काम दिया जा सकेगा। स्थानीय सम्पदा तथा साधनों का अच्छा उपयोग होगा और आवश्यकतानुसार काम धंधे शुरू करके लोग आजीविका कमा सकेंगे। रोजगार धंधे बढ़ने से गांवों का आधार मजबूत होगा और आर्थिक समृद्धि आएगी। महिलाओं के अच्छे प्रतिनिधित्व से पर्दे और बाल-विवाह जैसी कुरीतियां दूर करने में मदद मिलेगी और दहेज प्रथा आदि को समाप्त करने की दिशा में आवश्यक पहल होगी, ग्रामीण विकास के लिए सबसे निचले स्तर तक लोकतंत्र को पहुंचाना, यही सरकार का उद्देश्य है। निचले स्तर पर विकास योजनाओं का लाभ पहुंचाने और गांधीजी का स्वराज का स्वप्न पूरा करके और गांवों को विकास का एक पूर्ण केन्द्र बनाकर ही हम गांवों में खुशहाली ला सकेंगे। अब तक सारे प्रयास सरकार द्वारा किए जाते रहे हैं लेकिन पंचायती राज के माध्यम से विकास की जिम्मेदारी गांवों के लोगों पर छोड़ना एक सार्थक कदम है जो काफी पहले उठा लिया जाना चाहिए था। इसमें कोई संदेह नहीं कि विकास में गांवों के लोगों की सक्रिय भागीदारी से गांवों में खुशहाली आएगी, विकास होगा, शहरों की ओर पलायन रुकेगा और गांव देश की समृद्धि में सहयोग करके राष्ट्र को एक नई ऊंचाई तक पहुंचा सकेंगे।

पी-11, प्रसाद नगर,
नयी दिल्ली – 110005

सफलता की कहानी

मां की मुस्कान

अ. सलीम शेरवानी

दिनांक 29 मई 1993 की प्रातः 9 बजे का समय। राजस्थान के जिला पाली के राजकीय चिकित्सालय पीपलीया कलॉ के प्रांगण में धीरे-धीरे अनेक माताएं तथा अभिभावक एक विशेष उत्साह लिए प्रवेश कर रहे थे। अवसर था भारत सरकार के क्षेत्रीय प्रचार विभाग द्वारा ब्लाक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पीपलीया कलॉ के चिकित्सालय में आयोजित स्वस्थ्य शिशु प्रतियोगिता।

इस प्रतियोगिता में शिशु 0 से 1 वर्ष तथा 1 से 3 वर्ष के ग्रुप में विभाजित कर दिये गये थे। 0 से 1 वर्ष के ग्रुप में 30 तथा 1 से 3 वर्ष की आयु ग्रुप में कुल 51 शिशुओं ने भाग लिया। इस प्रतियोगिता में पीपलीया कलॉ (जिला पाली) क्षेत्र के सभी जाति, जनजाति एवं पिछड़े वर्ग के माता-पिता तथा अभिभावक बड़े उत्साह से अपने शिशुओं को नहला-धुला कर सजा-संवार कर तथा काले टीके लगाकर उपस्थित हुए थे।

प्रतियोगिता में बच्चों के टीकाकरण की जांच की गयी, वजन लिया गया तथा उनकी चुस्ती फुर्ती भी जांची गयी। इस प्रतियोगिता में एक विशेष बात देखने में आयी वह यह थी कि लगभग 90 प्रतिशत शिशु टीके का लाभ उठा चुके थे तथा 0 से 1 वर्ष के ग्रुप में कुछ शिशुओं को केवल खसरा के टीके लगाना शेष था।

निर्णायकों द्वारा किये गये निर्णय के पश्चात् 1 से 3 वर्ष के बालकों में प्रथम स्थान प्राप्त करने वाला बालक दीपक कुमार पुत्र श्री रामचन्द्र सिंधी था। यह बालक सवा वर्ष का है तथा इसका वजन 13 किलोग्राम नापा गया। बालक पूर्ण रूप से हृष्ट पुष्ट, सुन्दर तथा आकर्षक तथा किसी भी प्रकार के इशारे पर उचित प्रतिक्रिया दे रहा था। जब निर्णय सुनाया गया तो दीपक की माता के चेहरे पर एक गर्वीली मुस्कान देखने को मिली। इस बालक को जब पुरस्कार प्रदान किया गया था, तो सभी उपस्थित समुदाय ने करतल ध्वनि से स्वागत किया था।

क्षेत्रीय प्रचार अधिकारी,
अजमेर (राजस्थान)

ग्रामीण समाज के कमजोर वर्ग के प्रति संचार माध्यमों का दायित्व

✍ रामजी प्रसाद सिंह

देश और समाज के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है कि समाज का प्रत्येक सदस्य राष्ट्रीय नव-निर्माण में भागीदार हो, राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि में सहायक, स्वस्थ और दीर्घजीवी हो, खुशहाल रहे, अपनी संतान का भविष्य बनाने में मददगार हो, अपनी मूल आवश्यकताएं—रोटी कपड़ा और मकान—सुलभ कर सके और स्वावलम्बी होकर प्रतिष्ठा और सम्मान की जिन्दगी बसर करे।

यह तभी संभव है जबकि गरीबी की रेखा के नीचे जीवन बिता रही एक तिहाई आबादी की उपयुक्त सहायता की जाये। उन्हें स्वावलम्बी बनाया जाये। योजना आयोग की रिपोर्ट के अनुसार गांवों में गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बिता रहे लोगों की संख्या 1983-84 में 22.15 करोड़ अर्थात् 40.4 प्रतिशत थी। इनमें अकेले उत्तर प्रदेश में 4.40 करोड़ लोग थे।

ग्रामीण विकास की अनेक योजनाओं — न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम, समेकित ग्रामीण विकास योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम, ग्रामीण विद्युतीकरण कार्यक्रम, बंजर भूमि विकास कार्यक्रम, मरुभूमि सुधार कार्यक्रम, खादी ग्रामोद्योग विकास, जवाहर रोजगार योजना, भूमि सुधार कार्यक्रम, साक्षरता अभियान — पर अमल के फलस्वरूप इनकी संख्या घटने की आशा थी किन्तु आबादी में वृद्धि के कारण इनसे अपेक्षित आशायें अभी भी अपूर्ण हैं। योजनाओं पर अमल के फलस्वरूप जितने लोग गरीबी की रेखा के ऊपर चले गये थे, उनसे ज्यादा बच्चे उनके घरानों में परिवार वृद्धि से नये मेहमान के रूप में पहुंच गये।

विश्व बैंक की रिपोर्ट से इस बात की पुष्टि होती है। हाल ही में जारी उसकी रिपोर्ट में बताया गया है कि भारत में गरीबी की रेखा के नीचे वाली आबादी 1985 में 40 प्रतिशत से घटकर 1992 में 22 प्रतिशत हो गयी है। फिर भी आबादी में वृद्धि के कारण उनकी कुल संख्या में वृद्धि हुई है। इस स्थिति को दूर करने के लिए जहां आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और प्रशासनिक स्तर पर बहुमुखी कार्यक्रम शुरू करने की आवश्यकता है वहीं इस प्रकार के संचार माध्यमों को जन जागृति पैदा करने के लिए एकजुट होकर काम करना चाहिए।

श्रव्य दृश्य प्रचार साधनों को नाटक, कहानी, वार्ता, चुटकुलों, नारों, भेंटवार्ता, आध्यात्मिक परिसंवाद आदि के जरिये परिवार नियोजन आंदोलन पर बल देने की आवश्यकता है। परिवार नियोजन कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए पूर्ण साक्षरता जरूरी है। इसमें समाचार पत्रों और चलचित्रों की भूमिका अहम हो सकती है। समाचार पत्रों को आलेखों, चित्रों, कविताओं, व्यंग्य चित्रों और कथाओं के माध्यम से जन साधारण को बताना चाहिए कि परिवार वृद्धि के फलस्वरूप देश में प्राणियों के विकलांग, अपंग, अशक्त होने की संभावना बढ़ जाती है।

इसके लिए समाचारपत्रों को विशेष रूप से स्तंभ चलाने के लिए प्रेरित करना होगा। जनता को समझाना होगा कि धरती पर आबादी बढ़ने से प्राणवायु (आक्सीजन) की कमी हो जायेगी। वनों के विनाश से आक्सीजन व वर्षा की मात्रा घटेगी। वायुमण्डलीय संतुलन बिगड़ जायेगा। तापमान बढ़ जायेगा। सूखे और अकाल की स्थिति पैदा हो जायेगी। परिणामस्वरूप पर्यावरण से ओजोन की परत या तो हल्की हो जायेगी या उसमें छिद्र हो सकते हैं। उसके बाद सूरज की पराबैंगनी किरणें धरती पर सीधी पड़ने लगेंगी। इसके कारण पेड़-पौधे और वन नष्ट हो जायेंगे। मनुष्य और वन्य प्राणियों के शरीर सूख जायेंगे। चर्म रोग बढ़ जायेंगे। तपेदिक और कैंसर जैसी जानलेवा बीमारियां आम हो जायेंगी। इस जानकारी का जनता पर जरूर असर होगा। लोग अपनी संतान की रक्षा के लिए हर प्रकार का त्याग करने को तैयार हो जायेंगे।

पहले पहल जनसाधारण पर प्रभाव डालने वाले समाज के प्रबुद्ध वर्ग को प्रभावित करना होगा। उनकी मार्फत परिवार नियोजन का संदेश लोगों के घरों में पहुंचाना आसान हो जायेगा।

साक्षरता बढ़ाना अत्यंत जरूरी है। लेकिन साक्षरता की महिमा पर मात्र व्याख्यान देने के बजाय निरक्षर लोगों की आप-बीती परेशानियों और नव-साक्षरों की असाधारण उपलब्धियों को संचार माध्यमों द्वारा उजागर किया जाना अधिक उपयोगी होगा। इसके बाद गांवों में स्वयंस्फूर्त नेतृत्व पैदा होगा।

समाचार पत्रों को गरीबों के बीच इस धारणा को भी दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए कि केवल सेब और अंगूर खाने से लोग बलशाली होते हैं। गाजर, मूली और तरह-तरह की शाक सब्जियों में भी सभी पोषक तत्व होते हैं। इससे एक ओर उनकी हीन भावना दूर होगी, दूसरी ओर लोगों को पौष्टिक आहार लेने की प्रेरणा मिलेगी। अगर जनता के दिलों में केवल एक बात घर कर जाये,

कि साफ पानी पीने से असंख्य बीमारियां दूर हो जाएंगी तो हम गांवों को दवाइयों के मोहताज होने से बचा लेंगे।

गांव भी आजकल उपभोक्ता संस्कृति के शिकार हो रहे हैं। सादे और दीर्घ जीवन की महत्ता वे भूलते जा रहे हैं। अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह करने की प्रथा बढ़ रही है इसके कारण गरीबी और बीमारी बढ़ रही है। उपलब्ध साधनों का उपयोग पूंजी बनाने या उत्पादन बढ़ाने के बजाय बाह्याडम्बर बढ़ाने के लिए भी किया जा रहा है।

महाराष्ट्र के लातूर जिले के भूकम्प से 50 लाख हताहतों की मार्मिक कहानी से आज सभी अवगत हैं। काश वहां के लोग कमजोर महल बनाने की बजाय मिट्टी के मकानों या परम्परागत कुटियों में रहते तो शायद जानमाल का इतना नुकसान न होता। "सादा जीवन, दीर्घ जीवन—सुखी जीवन" का संदेश हम इस प्राकृतिक विपदा के माध्यम से घर-घर पहुंचा सकते हैं।

हमें देखना है कि भूख की समस्या विकराल न बन जाये। भूमिहीनों को पशु पालन, मछली पालन, मधुमक्खी पालन, लघु एवं कुटीर उद्योग आदि की महत्ता से परिचित कराना होगा। लोकगीतों और भजन के सहारे ज्ञान का प्रचार किए जाने की परम्परा का असर आज भी विलुप्त नहीं हुआ है इसी कारण साधारण व्यक्ति आज भी तुलसीदास, कबीर, रहीम, अमीर खुसरो आदि के नीति संबंधी गीतों और दोहों के सहारे अनेक प्रकार की सीख लेते हुए देखे जा सकते हैं।

हरियाणा और पंजाब के किसान अब दूरदर्शन/आकाशवाणी के ग्रामीणों के कार्यक्रम को नियमपूर्वक सुनते हैं और बतायी गयी बातों पर अमल करते हैं। परन्तु उत्तर प्रदेश और बिहार के काफी किसान आज भी पुराने तरीके की खेती करते हैं। लोकहित की बातें लोकभाषा में बतायी जाती हैं तो वे स्वतः दूर-दूर तक पहुंच जाती हैं। हित अनहित की पहचान पशु पक्षी भी करते हैं तो मनुष्य क्यों नहीं करेगा, यदि उनके हित की बात, उनके दिल में बैठा दी जाये फिर, वे आपका काम स्वयं संभाल लेंगे। सारांश यह कि हम सभी व्यक्तिगत प्रचार, व्यक्तिगत वार्ता, सहज वार्ता पर ध्यान देंगे तो निश्चित रूप से कमजोर वर्ग के नागरिकों को अपनी ओर खींचने में सहायक होंगे।

कहीं-कहीं कमजोर वर्ग के लोग वोट देने के महत्व को नहीं जानते हैं। यह साधारण अधिकार नहीं है। वोट के महत्व से भी उन्हें अवगत कराया जायेगा तो निश्चित रूप से नेक विचार के लोगों को अपना प्रतिनिधि चुनेंगे। थैली या डंडे के बल पर जीतने वालों को पराजित करेंगे।

कमजोर वर्ग को समान नागरिक अधिकारों से भी अगवत कराना चाहिए तथा गरीबी उन्मूलन के लिए अमल में लायी जा रही विभिन्न योजनाओं के ब्यौरे से परिचित कराना चाहिए। इसके लिए प्रचार माध्यमों को समाज की सबसे छोटी इकाई ग्राम पंचायतों तथा ग्राम नेताओं का इस्तेमाल करना चाहिए तथा बेइमान वर्ग द्वारा गरीबों के लिए निर्धारित साधनों के उपयोग का भण्डाफोड़ करना चाहिए। सबसे जरूरी यह है कि स्वयं प्रचार साधनों को अपनी विश्वसनीयता बढ़ानी चाहिए। चाणक्य, तुलसीदास, रहीम, कबीर, गांधी, विनोबा, लोहिया यदि स्वयं त्यागी नहीं होते तो उनकी बातें कोई नहीं सुनता।

अधिकांश महिलाओं को कमजोर वर्ग की संज्ञा दी जाती है। यद्यपि आर्थिक क्षेत्र में उनकी भागीदारी लगभग आधी है, तथापि उनका अधिकार क्षेत्र अत्यंत सीमित है। मताधिकार के अलावा शिक्षा, विवाह, सम्पत्ति, मजदूरी और रोजगार के मामले में उन्हें कानून द्वारा समान अधिकार दिया गया है। पंचायती संस्थाओं और कुछ नौकरियों में उनके लिए आरक्षण का प्रबंध है। उन्हें उसकी सम्यक जानकारी दी जानी चाहिए। हाल ही में पिछड़ों को सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत का आरक्षण दिया गया है। इसका लाभ पिछड़ी जातियों के अमीर तबके न उठाएं, उसके लिए पर्याप्त जन जागृति पैदा करने की जरूरत है।

त्याग से आध्यात्मिक शक्ति मिलती है। व्यक्ति पुरुष से पुरुषोत्तम, पुरुषोत्तम से परमात्मा बन जाता है। फिर उसकी वाणी देववाणी के रूप में सर्वत्र गूंजती है। लोग उस पर चिंतन, मनन और अमल करते हैं और बहुत दूर तक अपनी यात्रा को सार्थक बनाते हैं। लेकिन, अपने अधिकार का त्याग करना महादुष्कर्म है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है "अधिकार खोकर बैठ रहना, यह महादुष्कर्म है। न्याय के लिए अपने बंधु को भी दंड देना धर्म है।"

जन सम्पर्क अधिकारियों को, जनता को सब्ज बाग दिखाने से परहेज करना चाहिए। जनता को पहले उनके तात्कालिक हितों की सूचनाओं से अवगत कराना चाहिए, अपना दिल उड़ेलकर, सतही तौर पर नहीं। महाकवि अकबर ने कहा थाः

"इश्क को दिल में जगह दे ऐ, अकबर।
इल्म से शायरी नहीं होती।"

सचमुच केवल पांडित्य के प्रचार से काम नहीं होगा। अपने लक्ष्य के प्रति निष्ठा की सर्वाधिक आवश्यकता है।

बी/2बी–285, जनकपुरी,
नई दिल्ली– 58

सुनिश्चित रोजगार योजना क्या है

✍ मीता प्रेम शर्मा

स्वतंत्रता दिवस की 46वीं वर्षगांठ के अवसर पर 15 अगस्त 1993 को लाल किले की ऐतिहासिक प्राचीर से राष्ट्र को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री श्री पी. वी. नरसिंह राव ने आर्थिक कार्यक्रम को निर्बाध गति से चलाते रहने के सरकार के संकल्प को व्यक्त करते हुए कहा— "हमारी आर्थिक प्रगति संतोषजनक है तथा हमारे कार्यक्रमों का सीधा फायदा गरीबों और देहातवालों को मिलता है। हमारा सारा कार्यक्रम रोजगार पर निर्भर है और हमें देखना होगा कि कितना ज्यादा से ज्यादा रोजगार हम मुहैया करा सकते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में खेती के समय तो काम मिल जाता है लेकिन हर साल कम से कम सौ दिन ऐसे होते है, जिनको लीन सीजन कहते हैं, खेती का काम ज्यादा नहीं होता, लोग बेकार बैठे रहते हैं। हमने तय किया है कि इन सौ दिन के लिए काम मुहैया करेंगें। गारंटी न सही पर एश्योर्ड रूप में हम आपको आश्वासन देंगे कि जो काम करने को तैयार हैं उनको काम मिलेगा। जैसे महाराष्ट्र और कर्नाटक में आज किया जा रहा है, सारे देश में हम इसे चलाना चाहते हैं।"

"यह उन 1700 ब्लाकों में पहली बार होगा जिसकी घोषणा मैंने पिछले साल की थी। जहां गरीब से गरीब लोग रहते हैं, जो पहाड़ी इलाके हैं, रेगिस्तानी इलाके हैं, आदिवासी इलाके हैं, ऐसे 1700 ब्लाक चुने गए हैं आप जानते हैं कि उन ब्लाकों में काम शुरू होगा क्योंकि उन्हीं ब्लाकों में अधिक बेरोजगारी होती है। पेट भर खाने को नहीं मिलता है कई लोगों को। वहां हम इस कार्यक्रम की शुरूआत करना चाहते हैं फिर इसको देशभर में आगे फैलाऐंगे, बढ़ायेंगे।"

वस्तुतः देखा जाये तो भारत ही एक मात्र ऐसा देश नहीं है, जहां बेरोजगारी की समस्या मुंह बाए खड़ी हो। सभी विकासशील देश इस स्थिति से गुजर रहे हैं। प्रधानमंत्री जी एक अनूठे उपाय सुनिश्चित रोजगार योजना द्वारा अधिक से अधिक लोगों को रोजगार दिलाना चाहते हैं।

सुनिश्चित रोजगार योजना का मूल उद्देश्य उन जरूरतमंद लोगों को जो रोजगार चाहते हैं, गैर कृषि मौसम के दौरान निश्चित रूप से 100 दिन की मजदूरी दिलवाना है। यह योजना, सूखाग्रस्त क्षेत्र, आदिवासी क्षेत्र और पहाड़ी क्षेत्र के उन 257 जिलों के 1752 पिछड़े खण्डों में शुरू कर दी गई है जहां कुछ समय पूर्व नई सार्वजनिक वितरण प्रणाली शुरू की गयी थी।

18 वर्ष से अधिक और 60 वर्ष से कम उम्र वाले पुरुष व महिलाओं के लिए 100 दिन के रोजगार का आश्वासन होगा जो सामान्यतः सुनिश्चित रोजगार योजना के अन्तर्गत आने वाले खण्डों के जिलों में रहते हैं। एक परिवार के अधिक से अधिक दो वयस्क ही इस योजना के अन्तर्गत गैर कृषि मौसम के दौरान जब कभी वे चाहें, 100 दिन का रोजगार पा सकेंगें।

सुनिश्चित रोजगार योजना उन सभी ग्रामीणों के लिए है जो इसके अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र में रहते हैं, लेकिन लक्ष्य वही लोग होगे जो रोजगार की इच्छा रखते हैं। यह योजना केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना है। इसके व्यय को केंद्र और राज्यों के मध्य 80:20 के हिसाब से वहन किया जायेगा। जिलों के जिला कलेक्टर/उपायुक्त, सुनिश्चित रोजगार योजना के कार्यान्वयन प्राधिकारी के रूप में कार्य करेंगे। जिलों की प्रत्येक कार्यान्वयन एजेंसी के अध्यक्ष का कर्त्तव्य होगा कि वह उपायुक्त द्वारा सौंपे गये कार्यों को ईमानदारी से पूरा करें। व्यय की राशि के लेखों की उचित देखरेख, मजदूरों को भुगतान, उनकी उपस्थिति का ब्यौरा प्रस्तुत करने के साथ, इस योजना के अन्तर्गत सौंपे गए अन्य सभी कार्यों के लिए कार्यान्वयन एजेंसियां, उपायुक्त के प्रति उत्तरदायी होंगी।

कार्ययोजना का स्वरूप

उपायुक्त या कार्यान्वयन प्राधिकारी, उत्पादक कार्यों की विभिन्न योजनाएं तैयार करेंगे जिसमें (क) योजना/गैर योजना बजट के अन्तर्गत खण्डवार कार्य (ख) प्रत्येक खण्ड क्षेत्र में सुनिश्चित रोजगार योजना के निहित आरंभ किए जाने वाले नए कार्य शामिल होंगे। ये कार्य ऐसे होंगे जिन्हें दो वर्ष की अवधि में पूरा करना संभव होगा। साथ ही प्रत्येक मौसम के लिए कार्यों का कार्यान्वयन चरणबद्ध ढंग से होगा। प्रत्येक परियोजना, उसी वर्ष दिसंबर तक पूरी हो जानी चाहिए।

इस प्रकार सभी कार्यों को संबंधित कार्यान्वयन एजेंसियों को स्वयं करना होगा। यह कार्य किसी ठेकेदार को नहीं दिया जा सकेगा।

सुनिश्चित रोजगार योजना के अन्तर्गत श्रम-प्रधान कार्य ही होंगे। "श्रम प्रधान कार्य से तात्पर्य उन कार्यों से है जिनमें अकुशल श्रमिक की मजदूरी तथा उपकरण सामग्री तथा अन्य कुशल कार्य का अनुपात 60 : 40 से कम न हो। इस योजना के अन्तर्गत निम्न प्रकार के कार्यों को प्राथमिकता दी जायेगी:

1. जो गांव सड़क से जुड़े नहीं हैं उन्हें सड़क से जोड़ने हेतु मास्टर प्लान के आधार पर चुनी गयी सम्पर्क सड़कों का निर्माण करना।
2. जल संरक्षण, भूसंरक्षण, पेड़ों द्वारा अवरोध वन रोपण, कृषि बागवानी, वन चरागाह आदि योजनाओं के आधार पर कार्य।
3. लघु सिंचाई टैंक, ग्रामीण टैंक, नहर का कार्य आदि।
4. जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत कार्यान्वित की जा रही 'आपरेशन ब्लैक बोर्ड' योजना की पद्धति के आधार पर प्राथमिक स्कूल भवनों का निर्माण कार्य।
5. आंगनवाड़ी के लिए भवन।

पंजीकरण विधि : 18 वर्ष से अधिक तथा 60 वर्ष से कम आयु वाले उन लोगों को जो इस योजना के अन्तर्गत काम चाहते हैं, अपनी-अपनी ग्राम पंचायतों में नाम दर्ज कराना होगा। ग्राम पंचायतें पंजीकृत लोगों की संख्या के बारे में खण्ड विकास अधिकारी को रिपोर्ट देंगी जो इनके ब्यौरे को संकलित कर 31 जनवरी, 1994 तक उपायुक्त को रिपोर्ट भेजेगा।

प्रत्येक ऐसा परिवार जिसमें पति, पत्नी, बच्चे तथा अन्य आश्रित लोग शामिल हैं तथा जिसके वयस्क लोग, योजना के अन्तर्गत काम करने के लिए पंजीकृत किए गए हैं, उसे एक पारिवारिक कार्ड जारी किया जायेगा। आवश्यकता पड़ने पर इस योजना के अन्तर्गत उन्हें रोजगार दिलाया जायेगा। इस प्रकार मंदी के मौसम में कम से कम 20 पारिवारिक कार्ड वाले वयस्कों द्वारा काम की मांग करने पर सुनिश्चित रोजगार योजना के अन्तर्गत खण्ड विकास अधिकारी इन लोगों को 15 दिनों के अन्दर, अकुशल शारीरिक श्रम वाला रोजगार उपलब्ध करायेगा। खण्ड विकास अधिकारी ऐसे केवल 10 व्यक्तियों द्वारा रोजगार की मांग करने पर भी कार्य आरंभ करवा सकता है।

मजदूरी

(क) इस योजना के अन्तर्गत दी जाने वाली मजदूरी संबंधित राज्य सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम कृषि मजदूरी होनी चाहिए।

(ख) किसी एक अकुशल मजदूर द्वारा एक दिन में आठ घंटे किए गए कार्य की उत्पाद क्षमता को मानक मानकर मजदूरी पहले ही तय की जायेगी। कार्य आरंभ होने से पहले कार्य मानक एक बोर्ड पर प्रदर्शित किया जायेगा।

(ग) मजदूरी का भुगतान सरपंच, पंच, ब्लाक समितियों के सदस्यों की उपस्थिति में प्रति सप्ताह किया जायेगा।

(घ) महिलाओं व पुरुषों को समान कार्य के लिए समान मजदूरी दी जायेगी।

(ङ) कार्यान्वयन एजेंसियां मजदूरी के भुगतान के लिए उत्तरदायी होंगी।

(च) मजदूरी के एक भाग का भुगतान खाद्यान्नों के रूप में भी किया जा सकता है लेकिन यह प्रति श्रम दिन दो किलोग्राम से अधिक नहीं होना चाहिए तथा मजदूरी का 50 प्रतिशत से अधिक न हो।

सुनिश्चित रोजगार योजना के कार्यों को गैर कृषि मौसम की अवधि में ही किया जाना होगा।

ग्रामीण विकास का सबसे बड़ा अवरोध ग्रामीण रोजगार की समस्या है। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों की नितान्त कमी है। कृषि क्षेत्र में वर्ष भर तो रोजगार मिल नहीं पाता, अतः हमारा किसान मौसमी बेरोजगारी, अर्द्ध बेरोजगारी तथा अदृश्य बेरोजगारी के जाल में फंसा रहता है। फलस्वरूप कृषक रोजगार की तलाश में शहर की ओर पलायन कर जाता है। इस समस्या से छुटकारा पाने हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन के लिए राष्ट्रीय स्तर पर विगत वर्षों में कई कार्यक्रम प्रारंभ किए गए, जिनमें राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, राष्ट्रीय भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम तथा जवाहर रोजगार योजना प्रमुख हैं। किन्तु बेरोजगारी में वास्तविक कमी लाने व अकुशल मजदूर को कम से कम 100 दिनों का रोजगार देने हेतु अब सुनिश्चित रोजगार योजना आगे आई है।

जी-1/डी,
डी. डी. ए. फ्लैट्स मुनीरका,
नई दिल्ली–67

ग्रामीण विकास एवं जन सहभागिताः समस्या एवं समाधान

वेद प्रकाश उपाध्याय

भारत एक लोकतांत्रिक राष्ट्र है यहां कि 70 प्रतिशत जनता गांवों में रहती है। लोकतंत्र की अवधारणा मूलतः जन कल्याण की भावना पर आधारित होती है। सरकार की प्रमुख जिम्मेदारी है कि आम जनता के अधिकारों को ध्यान में रखते हुए उनकी बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करे। यहां की ग्रामीण जनता का मुख्य व्यवसाय कृषि है, जो कि प्रकृति पर निर्भर है। गरीबी और विषमता गांवों की मूल समस्याएं हैं। भारत में नियोजित विकास के आरम्भिक चरण से (1952) में एक व्यापक सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरम्भ किया गया। कृषि, ग्रामीण उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा तथा ग्राम्य जीवन की आवश्यक मूलभूत सुविधाओं की उपलब्धता पर मुख्य जोर दिया गया। जन सहभागिता के अभाव में यह कार्यक्रम अपेक्षित महत उद्देश्यों में सफल नहीं हो पाया। 1958 में प्रो. बलवन्त राव मेहता की संस्तुति के अनुसार, इस कार्यक्रम में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को महत्व दिया गया। जन सहभागिता को बढ़ाने के लिए विभिन्न स्तरों पर जन प्रतिनिधियों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गयी। सामुदायिक विकास कार्यक्रम से लेकर समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम तक की लम्बी विकास यात्रा तय करने के बावजूद जन सहभागिता का अभाव मूल समस्या है। इसके कई कारण हैं जो जन जीवन की मानसिकता, सामाजिक विषमता तथा तकनीकों से सम्बन्धित हैं।

विकास का असली स्वरूपः जन सहभागिता विकास की प्रारम्भिक अवस्था है। विकास का अर्थ मात्र आर्थिक प्रगति ही नहीं है। गुणात्मक विकास के लिए सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्षों पर भी जोर देना आवश्यक है। वर्तमान सामाजिक विषमताओं के परिप्रेक्ष्य में आर्थिक प्रगति को ही विकास का पर्याय माना जाता है। इस प्रकार असंतुलित विकास, समाज में साधन सम्पन्न लोगों को अधिक सम्पन्न तथा साधन विहीन जनता को और गरीब बना देता है जिससे कि अमीर और गरीब के बीच की खाई बढ़ जाती है। जनता की सक्रिय भागेदारी के अभाव में हमारे विभिन्न विकास कार्यक्रमों को अपेक्षित सफलता नहीं मिल पा रही है। फलस्वरूप विकास कार्यों पर व्यय किये जाने वाले धन का पूर्णरूपेण उपयोग नहीं हुआ है। अब तक विकास हेतु सभी योजनाओं में निवेशित धनराशि में उत्तरोत्तर वृद्धि की गयी लेकिन नियोजन के उद्देश्यों को पूर्णरूपेण प्राप्त नहीं किया जा सका। सरकारी मशीनरी की अक्षमता, नौकरशाही, उदासीन कर्मचारियों एवं ग्रामीण जनता की अज्ञानता तथा जनता की सक्रिय भागेदारी के अभाव के परिणाम स्वरूप विकास की किरण ग्रामीण क्षेत्रों को आशानुकूल समृद्ध एवं सम्पन्न नहीं कर सकी है।

जन सहभागिता में निम्नलिखित कारण बाधक हैं

मानवीय कारणः अधिकांश ग्रामीण जनता अशिक्षित है जिसके कारण वह अपनी जिम्मेदारियों तथा समस्याओं को अच्छी तरह से नहीं समझ पाती है। जनता के अन्दर जन चेतना का भी अभाव है। जनता अपने अधिकारों के प्रति भी जागृत नहीं है। फलस्वरूप वर्ग विशेष द्वारा जनता के अधिकारों का दुरुपयोग कर उनका शोषण किया जाता है। सरकार की तरफ ग्रामीण युवाओं की उपेक्षा होने के कारण इनका शहरों की तरफ पलायन हो रहा है। इन ग्रामीण युवाओं की ऊर्जा को विकास कार्यों हेतु उपयोग में लाने के लिए किसी भी प्रकार के क्रमबद्ध और संगठित प्रशिक्षण की व्यवस्था भी नहीं है, जिसके कारण युवा वर्ग दिग्भ्रमित होता जा रहा है जो कि राष्ट्र का भविष्य है। खेती योग्य जमीन पर वर्ग विशेष का अधिकार, मानवीय विषमता तथा दोषमुक्त सार्वजनिक वितरण प्रणाली, जनसंख्या वृद्धि, स्वास्थ्य तथा चिकित्सा सुविधाओं का अभाव तथा शिशु मृत्यु दर में वृद्धि इत्यादि बाधक जन सहभागिता को प्रभावित करते हैं।

सामाजिक कारण : ग्रामीण जनता का रूढ़िवादी परम्पराओं में अधिक विश्वास, जन चेतना का अभाव तथा धर्मान्धता के प्रति ज्यादा झुकाव होने के कारण लोग भाग्यवाद तथा अकर्मण्यता के आदी हो जाते हैं। ग्रामीण समाज में सामाजिक स्तरीकरण, जातिवाद, सम्प्रदायवाद इत्यादि व्यवस्था के कारण जनता सम्बद्ध होकर विकास कार्यों में आगे नहीं आ पाती है। ग्रामीण नेतृत्व की बागडोर सदैव गांवों के सुविधा सम्पन्न तथा अमीरों के हाथ में रहती है। अतः संसाधन विहीन कमजोर अल्पसंख्यकों की समस्याएं अपना उचित स्थान नहीं पाती, वर्ग विशेष की सुविधाएं एवं वर्चस्व ही ऐसे नेतृत्व का अभीष्ट होता है। सामाजिक कुरीतियां तथा विषमताएं बहुत हद तक जन सहभागिता को बाधित करती हैं।

आर्थिक कारण : विकास कार्यों के अध्ययनोपरान्त यह स्पष्ट है कि देश में भारी आर्थिक विषमता व्याप्त है। अधिकांश ग्रामीण गरीबी रेखा पर या उससे नीचे जीवन-यापन कर रहे हैं। कृषि जोतों का असमान वितरण, अनार्थिक आकार तथा असंतुलित यंत्रीकरण भी ग्रामीणों की प्रमुख समस्याएं हैं। ग्रामीण जनता का भौतिकतावाद की तरफ पलायन, सरकार की कर नीति, कृषि उपज का अपर्याप्त व अनुचित मूल्य, अनुचित मजदूरी, दैनिक उपभोग की वस्तुओं में भारी मूल्य वृद्धि तथा ग्रामीण जनता की क्रय शक्ति का अभाव इत्यादि कारण जन सहभागिता को प्रभावित करते हैं।

अनुसंधानों से प्राप्त नयी तकनीकें ग्रामीण क्षेत्रों तक प्रभावी रूप में नहीं पहुंच पाती हैं। वस्तुतः तकनीकों का विकास एवं प्रसार वैज्ञानिकों एवं अनुसंधानशालाओं के उद्देश्यों की पूर्ति करता है। ऐसी कोई निश्चित नीति नहीं है कि अनुसंधान की प्राथमिकताएं उपभोक्ताओं की समस्याओं पर आधारित हों। वैज्ञानिक प्रायः यह नहीं सोचते कि तकनीक को उपयोग में लाने वाले कौन हैं, उनकी क्या आवश्यकता है तथा किस प्रकार की तकनीक का उपयोग उनके लिए सम्भव होगा। अस्तु तकनीक की सफलता पर से जन सामान्य का विश्वास उठ जाता है। प्रसारकर्ता भी वैज्ञानिकों की बातों से सहमत नहीं होते हैं।

कुछ सुझाव : उपरोक्त सभी जन सहभागिता में बाधक कारणों को दूर करने के लिए एक योजनाबद्ध रणनीति अपनानी होगी जिसका स्वरूप इस प्रकार से होना चाहिए:

1. स्वयंसेवी संस्थाओं को प्रोत्साहन : पिछले कुछ दशकों में स्वयंसेवी संस्थाओं ने विकास कार्यों में बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अतः विकास कार्यों में जन सहभागिता को बढ़ाने हेतु स्वैच्छिक संगठनों का हर सम्भव सुविधा के द्वारा प्रोत्साहन करना होगा, आज भी बहुत से स्वयंसेवी संगठन समर्पित भाव से जन कल्याण एवं ग्रामीणोत्थान के प्रयास में लगे हुए हैं।

2. युवकों को प्रेरणा तथा प्रशिक्षण : युवा समाज हमारे समाज का महत्वपूर्ण अंग होता है। किसी भी देश का विकास उसके युवकों की प्रतिभा पर निर्भर करता है। अतः इस बात की आवश्यकता है कि युवकों को संगठित किया जाए तथा उन्हें रचनात्मक एवं विकास कार्यों में खुलकर भागीदारी हेतु प्रेरित एवं प्रशिक्षित किया जाए। ग्रामीण युवकों में नेतृत्व विकास के द्वारा नयी स्फूर्ति तथा ऊर्जा का संचार किया जा सकता है। जिससे कि ग्रामीण नेतृत्व की मदद से जन सहभागिता के स्तर को बढ़ाया जा सके। ग्रामीण युवकों में नेतृत्व विकास हेतु योजनाबद्ध ढंग से प्रशिक्षण कार्यक्रमों को आयोजित करना होगा जिससे कि ग्रामीण नेतृत्व की प्रेरणा व परम्परा विकसित की जा सके।

3. गरीबों/दलितों का संगठन : स्वतंत्रता प्राप्ति के चार दशक उपरान्त आज भी हमारे समाज में तमाम सामाजिक विकृतियां हैं जैसे गरीबी व पिछड़ापन। अतः आवश्यकता इस बात की है कि इन गरीबों तथा दलितों को संगठित होने हेतु प्रेरित किया जाए जिससे कि वे अपने दायित्वों तथा अधिकारों को समझकर उसका निर्वहन कर सकें।

4. वयस्क शिक्षा एवं जन संचार माध्यमों का तालमेल : ग्रामीण जनता का अशिक्षित होना ग्रामीण समाज के लिए एक अभिशाप है। अतः वयस्क शिक्षा व अनौपचारिक शिक्षा के द्वारा ग्रामीण लोगों में चेतना का विकास करना होगा तथा जन संचार माध्यमों के प्रभावी उपयोग द्वारा जनता को विभिन्न विकास कार्यक्रमों एवं उनके सामाजिक, आर्थिक पहलुओं के सम्बन्ध में जानकारी देनी होगा। हमारे वैज्ञानिकों को ग्रामीण जनता के निकट सम्पर्क में जाकर उनकी स्थानीय समस्याओं, साधनों तथा सामाजिक, आर्थिक एवं परम्परागत ज्ञान को समझना होगा जिससे कि उनकी आवश्यकतानुसार तकनीकों का विकास हो सके।

इस प्रकार विकास कार्यों में जन सहभागिता के स्तर को बढ़ाने के लिए स्वयंसेवी संस्थाओं को प्रोत्साहित करके, ग्रामीण युवकों को प्रेरित तथा प्रशिक्षित करके, गरीबों एवं दलितों को संगठित करके तथा सामान्य शिक्षा, वयस्क शिक्षा की व्यवस्था करके एक प्रभावी संचार एवं प्रसार रणनीति की आवश्यकता होगी। इस प्रकार की रणनीति के प्रभावी उपयोग हेतु समुचित प्रबंधन तंत्र की भी आवश्यकता होगी।

कृषि संचार एवं प्रसार,
कमरा नं. 45, शास्त्री भवन,
गो. ब. पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक
विश्वविद्यालय, पन्तनगर, 263145 नैनीताल

वयस्क शिक्षा कार्यक्रम और संचार माध्यम

✍ संजय कुमार प्रसाद

वर्तमान भारत में संचार-माध्यमों का सही ढंग से उपयोग नहीं हो पाया है। आज संचार के क्षेत्र में जिस प्रकार से क्रान्ति आयी है और नई तकनीक का विकास हुआ है; उस स्थिति में जरूरी हो जाता है कि हम भारतीय समाज को सूचना से सम्पन्न बनायें। संचार माध्यम समाज को नई दिशा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

आज संचार माध्यमों की स्वतंत्रता का आदर करना होगा और इसे ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचाने के लिए प्रयास करना होगा। भारत में अशिक्षा एक प्रमुख समस्या है और इसी के चलते अन्य समस्याएं भी जन्म लेती हैं। साक्षरता को बढ़ावा देने के लिए सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर प्रयास किये जा रहे हैं, लेकिन आशा के अनुरूप सफलता नहीं मिल पायी है जिसका परिणाम हुआ है कि आज भी भारत की लगभग आधी जनसंख्या निरक्षर है। हम संचार माध्यमों के द्वारा वयस्क शिक्षा जैसे कार्यक्रम को बढ़ावा दे सकते हैं। आज इलैक्ट्रानिक मीडिया की नई तकनीक आ जाने से यह काम और आसान हो गया है।

वयस्क शिक्षा को सिर्फ साक्षरता तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता। इसे संकुचित अर्थ में नहीं लिया जाना चाहिए। यह व्यक्ति के व्यक्तिगत भाव, जीवन-शैली और सामाजिक-आर्थिक स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन लाती है और जीवन को प्रगति के रास्ते पर ले जाकर एक वैज्ञानिक सोच को जन्म देती है।

1966 में वयस्क शिक्षा पर जो रिपोर्ट आयी उसमें प्रत्येक वयस्क को शिक्षा के अवसर देने पर बल दिया गया था और आशा व्यक्त की गयी थी कि इससे नागरिक की समृद्धि और व्यावसायिक दक्षता में वृद्धि होगी और वह सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में प्रभावशाली ढंग से भाग ले पायेगा। वयस्क शिक्षा एक ऐसा साक्षरता प्रशिक्षण है जिसके द्वारा हर वयस्क को अपने वातावरण का स्पष्ट बोध होता है और वह अपने वातावरण के साथ सामन्जस्य बिठाने की कोशिश करता है। व्यक्ति का व्यक्तित्व निखरता है। वास्तव में वयस्क शिक्षा बेहतर भविष्य के लिए एक प्रशिक्षण है इससे व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ समाज और राष्ट्र का विकास भी होता है। इससे जहां एक तरफ साक्षरता की दर बढ़ती है वहीं दूसरी तरफ व्यावहारिक जानकारी, आवश्यक दक्षता, सामंजस्य की भावना और विकास के अवरोधों से जूझने की शक्ति प्राप्त होती है।

सामान्यतः हम विकास को भौतिकवादी दृष्टिकोण से देखते हैं। लेकिन विकास का मुख्य आधार मानवीय पहलू होना चाहिए।

संचार वस्तुतः आम आदमी से जुड़ा होना चाहिए। संचार आम आदमी की परमावश्यक जरूरत है जो लोगों को "इन्सपायर" करता है। यह परम्परागत समाज को बदल कर विकासोन्मुख समाज बनाने में निर्णायक भूमिका निभाता है। संचार-माध्यम संचार के कमजोर वर्गों को सामाजिक न्याय, आर्थिक समानता और राजनीतिक भागीदारी दिलाने के लिए अभियान चला सकता है।

वयस्क शिक्षा कार्यक्रम में जहां एक तरफ आधुनिकतम जन-संचार माध्यमों का उपयोग किया जा सकता है, वहीं पारम्परिक जन-संचार माध्यम भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। पारम्परिक जन-संचार माध्यमों में लोक माध्यम जैसे लोक गीत, लोक नृत्य और नाटकों का उपयोग किया जा सकता है। निःसंदेह आज भी गांव में पारम्परिक जन-संचार माध्यमों की लोकप्रियता ज्यादा है जबकि अशिक्षा, गरीबी, अज्ञानता, पारम्परिकता और रूढ़िवादिता के चलते आधुनिक जन-संचार माध्यमों की पहुंच ग्रामीण और पिछड़े इलाकों में नहीं हो पायी है।

रेडियो ही एकमात्र ऐसा माध्यम है जिसने बहुत हद तक ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में अपनी लोकप्रियता आज भी कायम रखी है और सामान्य जनता की मानसिकता बदलने में सफल हुआ है। विकसित देशों में जन-संचार माध्यमों का पूरी तरह व्यवसायीकरण और शहरीकरण होता जा रहा है। लेकिन लोक-माध्यमों से ग्रामीण जनता आज भी प्रभावशाली ढंग से जुड़ी हुई है, हम अरनाकुलम (केरल) जिला का उदाहरण ले सकते हैं जहां 'केरल शास्त्र साहित्य परिषद' नाम की एक संस्था ने लोक-माध्यमों के द्वारा जनता को साक्षर बनाने का अभियान चलाया और सफल रहा। इसी माडल को अपनाकर 'भारत ज्ञान-विज्ञान समिति' पूरे देश में साक्षरता अभियान छेड़े हुए है, जिसमें कला जत्था के माध्यम से आम लोगों को साक्षर बनाने के साथ-साथ उनके वैज्ञानिक सोच को भी पैदा किया जा रहा है। सही में, साक्षरता ने सफलता का दरवाजा खोला है। यह आम जनता को इस योग्य बनाती है कि वह आज के वैज्ञानिक,

तकनीकी, आर्थिक और राजनीतिक विश्व में प्रवेश कर सके। विकास कार्यरूप में वयस्क शिक्षा कार्यक्रम से सीधा जुड़ा हुआ है। साक्षरता आम आदमी में राजनीतिक जागरूकता को बढ़ाती है।

1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में आधुनिक संचार माध्यमों के उपयोग पर विशेष बल दिया गया था। इन्दिरा गांधी खुला विश्वविद्यालय में संचार विभाग के निदेशक रह चुके डॉ. अब्दुल वहीद ने 'दूर शिक्षा में जन-संचार' विषय पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था कि आकाशवाणी और दूरदर्शन शिक्षा को प्राथमिकता की सीढ़ी में हमेशा नीचे रखते हैं। उन्होंने स्पष्ट तौर पर कहा कि दूरदर्शन जैसे प्रभावशाली माध्यम का शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य और परिवार नियोजन के लिए समुचित उपयोग नहीं हो पाया है।

जन-संचार माध्यमों की अपनी निहित सीमा, ग्रामीण क्षेत्रों में संचार तकनीक के प्रवाह का अभाव और संचार तकनीक के एक दिशा में बहाव के कारण वयस्क शिक्षा कार्यक्रम पूर्ण सफल नहीं बन पाया है। आज आवश्यकता इस बात की है कि वयस्क शिक्षा जैसे कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए पारम्परिक जन-संचार माध्यम के साथ-साथ आधुनिक जन-संचार माध्यमों का भी उपयोग किया जाए। आज संचार माध्यमों और आम लोगों के बीच जो संचार न होने की स्थिति बनी हुई है, उसे बदलना होगा। हमारे नीति-निर्माताओं और प्रशासकों को चाहिए कि वे वयस्क शिक्षा कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए सामूहिक प्रयास करें। विशेष रूप से इस योजना को बनाने में संचार विशेषज्ञों को शामिल किया जाना चाहिए। साथ में दूरदर्शन जैसे प्रभावी माध्यम पर शिक्षा के लिए एक चैनल सुरक्षित किया जाए। इसके लिए सावधानीपूर्वक, क्रमबद्ध और नियोजित प्रयास करके संचार माध्यमों का प्रभावी उपयोग किया जा सकता है। सुनियोजित संचार नीति बनाकर देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति में आमूल-चूल परिवर्तन लाया जा सकता है। अगर दृढ़ निश्चय से नियोजित कार्यक्रम बनाकर संचार का उपयोग किया जाए तो इसमें सफलता अवश्य मिलेगी। संचार माध्यमों का उपयोग इस तरह होना चाहिए कि इससे सभी लोग जुड़ सकें और अपने शिक्षा स्तर एवं जीवन स्तर को सुधार सकें। अगर सम्भव हो तो नीति-निर्धारण करने में स्थानीय लोगों का सहयोग भी लेना चाहिए।

संचार माध्यमों के प्रयास से जिस दिन भारत पूर्ण साक्षर देश बन गया, निःसंदेह वह दिन हम लोगों के लिए तो गौरवशाली होगा ही, संचार माध्यमों को भी भारत को सम्पूर्ण साक्षर देश बनाने में अपनी भूमिका के लिए गर्व की अनुभूति होगी।

ग्राम : पंजवार,
डाक घर : पंजवार,
जिला : सीवान (बिहार),
पिन : 841509

पाठकों के विचार

इस पत्रिका में "पाठकों के विचार" नाम से एक नया स्तंभ आरंभ किया गया है। इस स्तंभ में पाठकगण ग्रामीण विकास के विभिन्न पहलुओं पर अथवा इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों पर अपने विचार भेज सकते हैं। ये विचार ढाई सौ शब्दों से अधिक न हों और सम्पादक, कुरुक्षेत्र, कमरा न० 467, कृषि भवन, नई दिल्ली-110001 के पते में भेजे जाएं।

इसके लिए कोई पारिश्रमिक देय नहीं होगा परंतु उन पाठकों को पत्रिका की एक प्रति भेजी जाएगी जिनके विचार इस स्तंभ में प्रकाशित होंगे।

—सम्पादक

पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण सड़कों का विकास

✍ सत्यपाल मलिक

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का आधार वहां की परिवहन व्यवस्था है। यदि वहां की परिवहन व्यवस्था यानी सड़कें, रेल-मार्ग इत्यादि अच्छे होंगे तो वहां व्यापार भलीभाति फले फूलेगा और आर्थिक स्थिति में सुधार होगा। सड़कों पर गांवों का विकास आधारित है। गांव वाले अपना अनाज, साग सब्जियां व दूध इत्यादि सड़कों से ही मंड़ियों में ले जाकर बेचते हैं। यदि सड़कें ठीक ठीक नहीं होंगी तो अनाज, सब्जियां इत्यादि सड़ जायेंगी और गांव वालों को उन्हें मजबूरी में औने पौने दामों में बेचना पड़ेगा। इससे उनकी आय अच्छी नहीं होगी। ग्रामीणों के जीवन स्तर में सुधार हो और उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत हो, उसके लिए सड़कों का होना जरूरी हैं। उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार तभी होगा जब उन्हें माल का उचित मूल्य मिले। उचित मूल्य मिलने से उनका विकास होगा और इससे देश का भी विकास होगा। किसी भी देश के आर्थिक विकास में उसके गांवों का विशेष महत्व होता है।

भारत गांवों का देश है। आज भी देश की 70 प्रतिशत से अधिक आबादी गांवों में रहती है। अगर गांव पिछड़े हैं तो देश पिछड़ा है। यदि गांव आगे बढ़ते हैं तो देश आगे बढ़ता है। हमारी पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत ग्राम विकास को प्राथमिकता दी गयी। आजादी से पहले हमारे ज्यादातर गांव अलग-थलग पड़े हुए थे लेकिन आजादी के बाद उन्हें एक दूसरे से जोड़ा गया। उनके व अन्य क्षेत्रों के बीच सम्पर्क स्थापित किया गया और इस काम को अंजाम देने में सड़कों की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

नागपुर योजना

स्वतंत्रता से पूर्व सड़कों के सुनियोजित विकास की रूपरेखा निर्धारित करने के लिए 1943 में केंद्रीय और प्रान्तीय सरकार के इंजीनियरों का एक सम्मेलन नागपुर में आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन में सड़कों के विकास हेतु एक 20 वर्षीय कार्य योजना बनाई गयी जो नागपुर योजना के नाम से जानी जाती है। नागपुर योजना में सड़कों को राष्ट्रीय, राज्यीय, जिला एवं ग्राम स्तर में विभाजित किया गया।

ग्राम स्तरीय सड़कों के बारे में योजना में कहा गया कि ये सड़कें पगडंडी, पथ और मार्ग के रूप में हो सकती हैं। इनका डिजाइन, निर्माण और देखरेख प्रान्तीय या राज्य मुख्य मार्ग विभाग के अन्तर्गत होगा। इस योजना में 448 करोड़ रुपये के व्यय से 430 हजार मील लम्बी सड़क बनाने का प्रस्ताव रखा गया। केन्द्रीय सड़क बोर्ड स्थापित करने की सिफारिश की गयी और यह लक्ष्य रखा गया कि सड़क प्रसार इस प्रकार हो कि योजना पूरी होने पर किसी भी विकसित कृषि क्षेत्र का गांव मुख्य सड़क से पांच मील (8 किलोमीटर) तथा अविकसित क्षेत्र का गांव मुख्य सड़क से 20 मील (32 किलोमीटर) से अधिक दूरी पर न रह सके। कुछ संशोधनों सहित नागपुर योजना को पहली अप्रैल, 1947 से लागू किया गया।

योजनाबद्ध विकास

स्वतंत्रता के पश्चात् पंचवर्षीय योजनाओं में सड़क विकास की तरफ विशेष ध्यान दिया गया तथा सड़क विकास में अधिक गति आई। प्रथम योजना के आरम्भ में देश में 1,57,000 किलोमीटर पक्की और 2,43,000 किलोमीटर कच्ची सड़कें थीं। योजनाकाल में सड़कों के विस्तार में काफी प्रगति हुई। मार्च 1988 में देश में पक्की सड़कें 18,43,420 किलोमीटर तथा कच्ची सड़कों की लम्बाई 8,88,380 किलोमीटर हो गयी। देश के पिछड़े भागों और ग्रामीण क्षेत्रों को मुख्य सड़क से जोड़ने का प्रयास किया गया और प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में सड़क विकास के लिए योजनागत व्यय की राशि बढ़ती गयी जैसा कि आगे तालिका में किया गया स्पष्ट है।

ग्रामीण सड़कों से संबंधित नागपुर योजना के लक्ष्य दूसरी पंचवर्षीय योजना तक प्राप्त कर लिए गए। प्रथम एवं द्वितीय योजनाकाल में पिछड़े हुए क्षेत्रों का ध्यान रखा गया। सामुदायिक विकास योजनाओं तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा क्षेत्रों में जन सहयोग द्वारा सड़कों का निमार्ण किया गया।

नई सड़क योजना

सड़क परिवहन की भावी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए तृतीय योजना के प्रारंभ में केंद्रीय सरकार ने एक समिति गठित की। इस समिति ने बीस वर्षीय (1961-1981) योजना तैयार की। इस योजना में ग्रामीण सड़कों के विकास पर विशेष जोर दिया गया। उससे संबंधित समिति की मुख्य सिफारिशें इस प्रकार हैं:

क) इधर कुछ समय से ग्रामीण जनता की प्रवृत्ति नगरीय क्षेत्रों की ओर पलायन की हो गयी है। इसका मुख्य कारण गांवों में सुविधाओं का न होना है। इस प्रवृत्ति की रोकथाम एक अच्छी सड़क संचार व्यवस्था ही कर सकती है।

ख) सड़कों का वर्गीकरण मोटे तौर पर वही होगा जैसा नागपुर

योजनाकाल में सड़क विकास पर व्यय

(करोड़ रुपये में)

अवधि	प्रावधान	खर्च
प्रथम योजना (1951-56)	135	147
द्वितीय योजना (1956-61)	236	242
तृतीय योजना (1961-66)	297	440
वार्षिक योजनाएं (1966-69)	291	309
चतुर्थ योजना (1969-74)	871	862
पांचवीं योजना (1974-79)	1353	1701
वार्षिक योजना (1979-80)	454	467
छठी योजना (1980-85)	3439	3887
सातवीं योजना (1985-90)	5700	6335
वार्षिक योजना (1990-91)	1833	1731
वार्षिक योजना (1991-92)	2066	1925
आठवीं योजना (1992-97)	12833	—

योजना में रखा गया है यथा राष्ट्रीय मुख्यमार्ग, राज्य मुख्यमार्ग, मुख्य जिला सड़कें, अन्य जिला सड़कें और गांव की सड़कें। इस योजना में उन्हीं सड़कों पर विचार किया गया है जो कुछ न्यूनतम मानकों के अनुरूप हों।

योजना का आधार यह था कि कृषि की दृष्टि से विकसित क्षेत्रों में कोई भी गांव किसी पक्की सड़क से 6.4 कि. मी. तथा अन्य किसी सड़क से 2.4 कि. मी. से अधिक दूर न रहे। इस योजना के लिए 5,200 करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया जिसमें से 630 करोड़ रुपये ग्रामीण सड़कों के लिए थे।

चौथी एवं पांचवीं योजनाओं में ग्रामीण सड़कों के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया। राज्य सरकारों ने अपने सड़क विकास साधनों का 25 प्रतिशत ग्रामीण सड़कों के विकास पर व्यय करने का निश्चय किया।

पांचवीं योजना में एक नया कार्यक्रम न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम शुरू किया। ग्रामीण सड़कों के विकास के कार्य को इस कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनाया गया।

छठी योजना में ग्रामीण सड़कों का तेजी से विकास करने पर विचार किया गया। इस योजना में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत डेढ़ हजार तथा उससे ऊपर की जनसंख्या वाले सभी गांवों तथा सातवीं योजना के अन्त एक हजार से डेढ़ हजार तक की जनसंख्या वाले 50 प्रतिशत गांवों को पक्की सड़कों से जोड़ने का कार्यक्रम बनाया गया।

चूंकि पर्वतीय, आदिवासी, तटीय तथा मरुस्थलीय क्षेत्रों में आबादी छितरी हुई है तथा बस्तियां एक दूसरे से काफी फासले पर बसी हैं, इसलिए सातवीं योजना में इन क्षेत्रों में ग्रामीण सड़कों के लिए न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के मानदण्डों को निम्नानुसार संशोधित किया गया:

(क) पर्वतीय क्षेत्र : डेढ़ हजार से अधिक जनसंख्या वाले सभी गांवों को दस वर्षों की अवधि में पक्की सड़कों से जोड़ना तथा इसी अवधि में 200 से 500 तक की जनसंख्या वाले 50 प्रतिशत गांवों को सड़कों से जोड़ना।

(ख) आदिवासी, तटीय तथा मरुस्थलीय क्षेत्र : दस वर्ष की अवधि में एक हजार से अधिक जनसंख्या वाले सभी गांवों को सड़कों से जोड़ना और 500 से 1000 तक की आबादी वाले 50 प्रतिशत गांवों को सड़कों से जोड़ना।

सातवीं योजना में इस कार्यक्रम के लिए राज्य की योजनाओं में 1729.00 करोड़ रुपये व्यय किए गए। ग्रामीण सड़कों के निर्माण के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा भूमिहीन रोजगार गारंटी योजना (अब जवाहर रोजगार योजना) के अन्तर्गत भी व्यय किया गया। इस योजना में गांवों को बारहमासी सड़कों से जोड़ने के कार्य में महत्वपूर्ण सुधार हुआ। डेढ़ हजार तथा उससे अधिक आबादी वाले लगभग 90 प्रतिशत गांवों को पक्की सड़कों से जोड़ दिया गया यद्यपि बिहार, मिजोरम तथा पश्चिम बंगाल में इनका प्रतिशत क्रमशः 66,58,60 रहा।

आठवीं योजना में ग्रामीण परिवहन, ग्रामीण ऊर्जा तथा कृषि विकास को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है तथा ग्रामीण सड़कों के विकास के लिए निम्नानुसार प्राथमिकता दी गयी है:

(क) 1981 की जनगणना के अनुसार एक हजार तथा उससे अधिक की आबादी वाले सभी गांवों को पक्की सड़कों से जोड़ना।

(ख) पिछड़े तथा जनजातीय क्षेत्रों को पक्की सड़कों से जोड़ने के कार्य में तेजी लाने के लिए विशेष प्रयत्न करना।

गांवों को पक्की सड़कों से जोड़ने के लिए विभिन्न वर्षों में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत व्यापक व्यय किया गया।

जनसंख्या के अनुसार छोटे-बड़े गांवों को पक्की सड़कों से जोड़ने का प्रयास न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत किया गया इसका विवरण निम्न तालिका में है:

विशेष ध्यान दिया गया है और सड़कों के विकास कार्य को गति प्रदान की गई है, परन्तु अभी भी ग्रामीण क्षेत्र की सड़कों का पर्याप्त विकास नहीं हो पाया है और सड़कों की हालत अच्छी नहीं हैं। इसके अतिरिक्त सड़कों के रख-रखाव पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। यही कारण है कि हमारे अधिकतर गांव सड़कों की कमी के कारण विकसित नहीं हो पाये हैं।

ग्रामीण सड़क विकास में सबसे बड़ी बाधा यह रही है कि सड़क निर्माण और रख-रखाव का काम कई संगठनों के हाथ में है। इस कारण इनमें तालमेल में कमी रहती है और सड़कों का संतुलित विकास नहीं हो पाता।

हाल ही में केन्द्र सरकार ने संविधान संशोधन, पारित कर देश में पंचायती राज का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। अब ग्रामीण विकास के समस्त कार्य पंचायतें ही करेंगी। अब केन्द्रीय

गांवों को बारहमासी सड़कों से जोड़ने का विवरण

	डेढ़ हजार से अधिक आबादी वाले गांव	1000-1500 आबादी वाले गांव	1000 से कम आबादी वाले गांव
कुल गांव	71,623	58,229	4,37,197
सातवीं योजना तक जुड़े गांव	62,911	40,437	1,54,957
1990-91	788	861	1739
1991-92	934	668	2969

जैसा कि तालिका से स्पष्ट है। 1500 तथा उससे अधिक आबादी वाले कुल 71,623 गांवों में से 1991-92 तक 64,633 गांवों को पक्की सड़कों से जोड़ा जा चुका था। शेष 6,990 गांवों को बारहमासी सड़कों से जोड़ना बाकी है। इसी प्रकार 1000 से 1500 की आबादी वाले 58,229 गांवों में से 41,966 गांवों को जोड़ा जा चुका है तथा 16,263 गांवों को पक्की सड़कों से जोड़ना शेष है। 1000 से कम आबादी वाले 4,37,197 गांवों में से 1,54,957 को पक्की सड़कों से जोड़ा जा चुका है और 2,82,240 गांवों को जोड़ना शेष है।

यद्यपि पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण सड़कों के विकास पर

योजनाओं का धन सीधे पंचायतों को मिलेगा। पंचायतों को धन उपलब्ध कराने के लिए अब राज्यों में वित्त आयोग बनेंगे जो ग्राम विकास पर खर्च होने वाले अधिकांश धन को पंचायतों को आबंटित करने की सिफारिश करेंगे। ग्राम पंचायतें राशि उपलब्ध होने पर ग्रामीण सड़कों के विकास का काम प्राथमिकता के आधार पर हाथ में ले सकती हैं। आशा है इससे ग्रामीण सड़कों के निर्माण तथा रख-रखाव का कार्य तेजी से होगा और ग्रामीण विकास को गति मिलेगी।

जेड. पी. 13, मौर्य इन्कलेव,
पीतमपुरा, दिल्ली–110034

छोटी किन्तु गुणों से मोटी : हरड़

✍ आभा जैन

आयुर्वेद में हरड़ एक अत्यन्त प्रभावशाली तथा चमत्कारिक गुणों वाली औषधि मानी गई है। आयुर्वेद मे हरड़ की बहुत प्रशंसा की गई है और इसके गुण व लाभ का विस्तार से विवेचन किया गया है।

हरड़ शरीर से रोग के अंश को निकालती है और रोग से मुकाबला करने की शक्ति देती है। हरड़ का मुख्य काम शरीर के सभी अंगों से अनावश्यक पदार्थों को निकालकर प्रत्येक अंग यथा हृदय, मस्तिष्क, पेट, रक्त आदि को प्राकृतिक दशा में नियमित करना है। इसी कारण हरड़ का सेवन करने वाला बीमारियों से बचा रहता है।

हरड़ का संस्कृत नाम हरीतकी है।

भाव प्रकाश निघण्टु का कहना है कि चबाकर खाई हुइ हरड़ पेट की अग्नि को बढ़ाती है, पीसकर चूर्ण रूप में खाई हुई हरड़ लेने से दस्त साफ आती है, उबालकर खाने से दस्त बंद होती है और भूनकर खाने से तीनों दोषों को दूर करती है। भोजन के साथ हरड़ खाने से बुद्धि व बल में वृद्धि होती हैं और इन्द्रियों को हर्षित करती है तथा त्रिदोष नाश करती है। मल मूत्रादि विकारों को निकालती है, भोजन के अंत में खाई हुई हरड़ मिथ्या अन्न पान (गलत खान पान) से होने वाले वात, पित्त, कफ सभी विकारों को नष्ट करती है।

हरड़ का प्रयोग प्रायः उदर विकारों में ही ज्यादा किया जाता है। इसके अतिरिक्त बहुत से अन्य रोगों में हरड़ अत्यन्त लाभकारी है। यह शरीर से विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालती है तथा शरीर के प्रत्येक अंग को व्यवस्थित करती है। कब्ज को दूर करने तथा भूख को बढ़ाने के लिए हरड़ का नियमित सेवन करना चाहिए। अधिक लाभ के लिए हरड़ को घी में भुनकर काले नमक तथा जीरे के साथ मिलाकर बनाये बारीक चूर्ण का दूध या गर्म पानी के साथ सोने से पहले नियमित सेवन करना चाहिये।

नियमित रूप से रात्रि को सोने से पहले सेवन करने से फुंसिया, दाने और मुहांसे नहीं होते हैं। फुंसियों पर हरड़ पीसकर लेप करने से ठीक हो जाती हैं।

छोटी हरड़ को पीसकर छालों पर लगाने से मुंह तथा जीभ के छालों से छुटकारा मिल जाता है तथा मुख पाक मिटता है। जो न किसी भी दवा से ठीक न हो रहे हों इस दवा के लगाने से निश्चित रूप से ठीक हो जाते हैं। रात को भोजन के पश्चात एक छोटी हरड़ चूसें, इससे आमाशय और आंतड़ियों के दोषों के कारण लम्बे समय से चले आ रहे जीभ के छाले ठीक हो जाते है। हरड़ को चूसते रहने से पाचक अंग शक्तिशाली बन जाते हैं। हरड़ का प्रयोग करने से पेट के कीड़े भी समाप्त हो जाते हैं। यदा कदा रात को सोते समय हरड़ का चूर्ण लेकर दूध पीते रहने से प्रायः कोई बीमारी नहीं होती है।

हर प्रकार के पांडुरोग में छोटी हरड़ का चूर्ण गाय के घी में मिलाकर देने से लाभ होता है। पांच ग्राम बड़ी हरड़ को करेले के पत्तों के रस में घिसकर पीने से पांडुरोग मिट जाता है।

हरड़ को रात भर पानी में भिगो दें तो प्रातः उसी पानी से आंखें धोयें, इससे आंखें नहीं दुखती हैं और ठंडक बनी रहती है। हरड़, सेंधा नमक, गेरू और रसौत समभाग लेकर पानी में पीसकर पलकों पर लगायें इससे आंखों के सभी रोग दूर हो जाते हैं।

वायु विकार (गैसेस) की शिकायत होने पर हरड़ चूर्ण चार रत्ती की मात्रा में शहद से कई बार चटायें।

अचानक उल्टी आने पर हरड़ का बारीक चूर्ण चार रत्ती की मात्रा में शहद से कई बार चटायें। अपच के कारण या अमाशय में क्षोभ पैदा होने पर, हिचकी आने पर छोटी हरड़ का चूर्ण कुनकुने पानी के साथ सेवन करने से शीघ्र ही लाभ होता है। खांसी और श्वास में हरड़ का चूर्ण लाभकारी रहता है।

बच्चों का पेट दर्द होने पर किसी पत्थर पर छोटी सी हरड़ घिसकर कुनकुने पानी के साथ खिला दें, कुछ ही देर में पेट का दर्द ठीक हो जायेगा। हरड़ पिलाने से न केवल पेट दर्द थोड़ी देर में ही खत्म होता है बल्कि हरड़ पेट दर्द होने के कारण को भी नष्ट करती है।

सप्ताह में एक बार यदि बच्चे को हरड़ घिसकर दी जाये तो उसे कभी कब्ज की शिकायत नहीं होगी। उसका खाना भी ठीक से हजम होगा। हरड़ बच्चों की पाचनक्रिया को संतुलित रखती है।

हरड़ को हर मौसम में उपयोग किया जा सकता है। वर्षा ऋतु में सेंधा नमक के साथ, शरद ऋतु में शर्करा के साथ, हेमंत में सोंठ के साथ शिशिर में पिपली के साथ बसंत में शहद के साथ और ग्रीष्म में गुड़ के साथ हरड़ का सेवन करना चाहिए। वायु की अवस्था में हरड़ का घी के साथ, पित्त की अधिकता में सेंधा नमक के साथ तथा अन्य रोगों में गुड़ के साथ सेवन किया जाना चाहिए।

44, बंदा मार्ग,
भवानी मण्डी, (राज.)

न मन में कोई बोझ
न तन पे कोई बोझ
Rx
माला·डी
Mala·D
CONTRACEPTIVE PILLS
for oral use by women
एक गोली रोज
गर्भ निरोधक गोलियां
दो रुपये प्रति पैकेट
davp 93/437

आर. एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : (डी (डी एल) 12057/94
पूर्व भुगतान के बिना डी. पी. एस. ओ. दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN/708/57
P & T Regd. No. D •(DL) 12057/94
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली - 110001 द्वारा प्रकाशित और आकाशदीप प्रिन्टर्स, नई दिल्ली - 110002 द्वारा मुद्रित